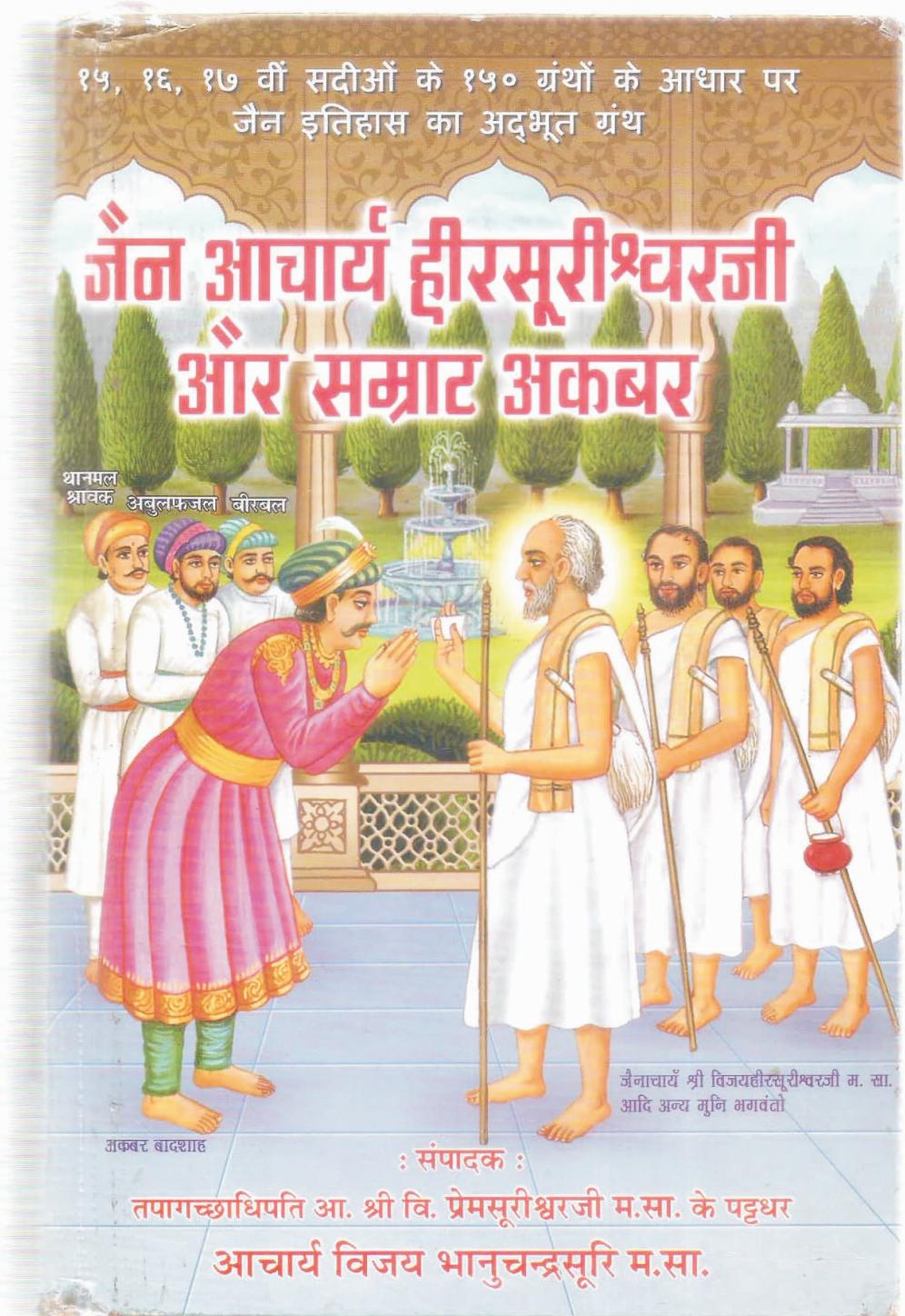


BHARAT GRAPHICS , AHMEDABAD - 1 Ph. (079) 22134176 , (M) 99250 20106



जैन आचार्य हीरसूरीश्वरजी और सम्राट् अकबर

: आशीर्वद :

तपागच्छसूर्य प. पू. आचार्यदेव
श्रीमद् विजय प्रेमसूरीश्वरजी महाराजा

: लेखक :

आचार्य विजय भानुचन्द्रसूरीश्वरजी म. सा.

: प्रकाशक :

श्री १०८ पार्थनाथ भक्तिविहार जैन द्रस्ट
मु. शंखेश्वर-३८४ २४६

संवत्
२०६२

बीर संवत्
२५३२

ईस्वीसन्.
२००६

श्री १०८ पार्श्वनाथ
भक्तिविहार जैन ट्रस्ट
मु. पो. शंखेश्वर-३८४२४६,
ता. समी, जी. पाटण
Ph. (02733) 273325, 273444

धर्मतीर्थ मानव सेवा ट्रस्ट
रमणभाई बी. शाह
परिश्रम एपार्टमेन्ट, १३२, फूट रोड,
उमीया विजय के पास, सेटेलाईट,
अहमदाबाद-३८० ०१५ (गुजरात)
Ph. (R.) (079) 26743531

प्राप्तिस्थान :

श्री महावीर जैन उपकरण भंडार
भोजनशाला के पास,
मु. शंखेश्वर-३८४२४६
ता. समी, जी. पाटण

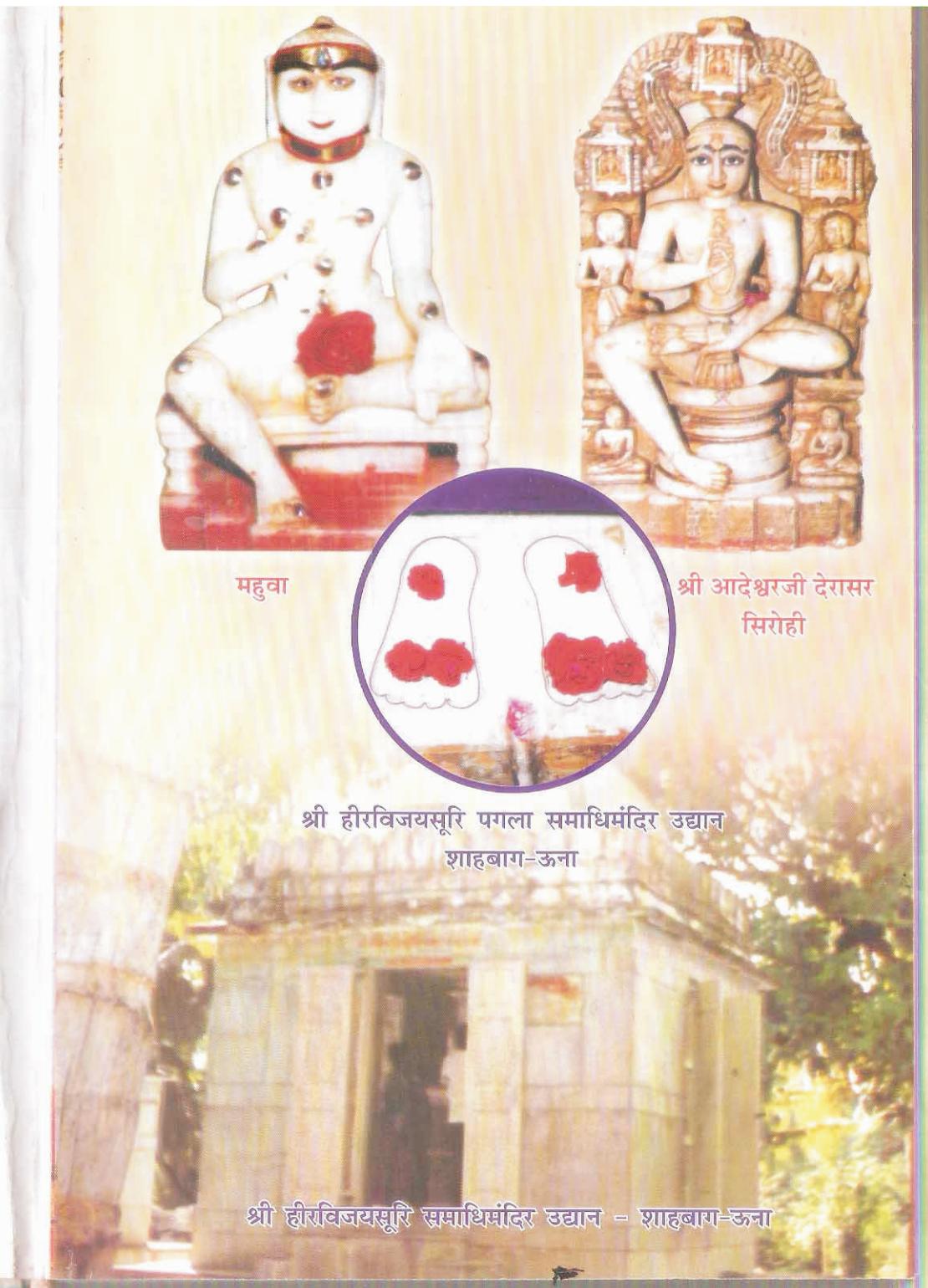
श्री लब्धिधाम तीर्थ
मु. धाकड़ी, ता. विरमगाम,
जि. अहमदाबाद, गुजरात
Ph. (02715) 295290

श्री सिद्धगिरि भक्तिविहार
जैन धर्मशाला
केशरीयाजी धर्मशाला के सामने,
तलेटी रोड, पालिताणा-३६४ २७०
Ph. : (02848) 252515

रसीकलाल चोवटीया
३४, एस. वी. पी. रोड, खेतवाड़ी,
छड़ी गली, क्रीष्णा विल्डिंग,
प्रथम मजला, मुंबई-४.
Ph. : (022) 30947960

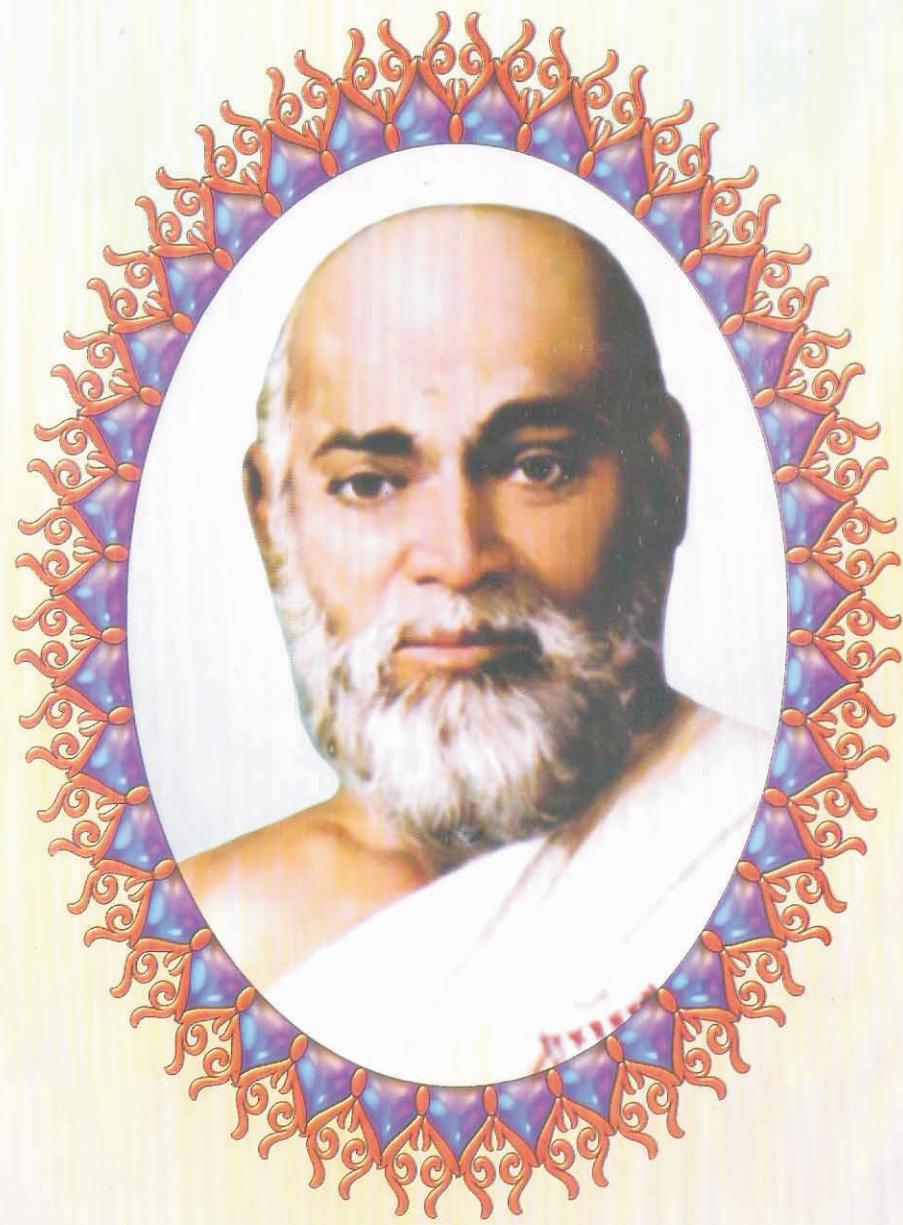
मूल्य : रु. १००-००

मुद्रक : भरत ग्राफिक्स,
न्यु मार्केट, पांजरापोल, रिलीफ रोड, अहमदाबाद-१.
Ph. : (079) 22134176, (M.) 9925020106



श्री हरिविजयसूरि समाधिमंदिर उद्यान - शाहबाग-ऊना

जगत्पूज्य, शास्त्रविशारद, जैनाचार्य



श्री विजय धर्मसूरीश्वरजी म.सा. (काशीवाला)

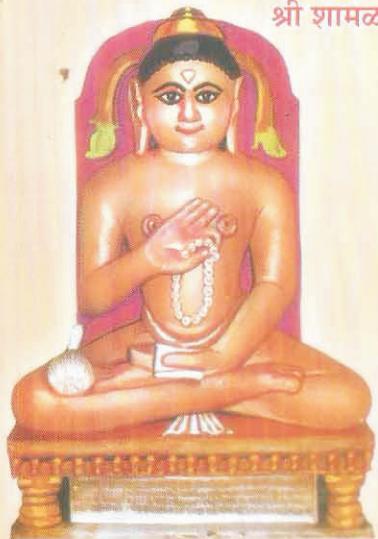


श्री हीरविजयसूरि काष्ठमूर्ति,
दोशीवाडानी पोल
अમदाबाद



राधनपुर

श्री शामळाजीपाश्वनाथ देरासर
डभोई



प.पू. प्रशांतमूर्ति गच्छाधिपति आचार्य



श्री विजय प्रेमसूरीश्वरजी म.सा.

समर्पणमस्तु

मेरे परमोपकारी प. पू. गुरुदेव आचार्य भगवंत श्रीमद्
विजय प्रेमसूरीश्वरजी महाराजा

- जिन्होंने मुझे इस संसार सागर से निकालकर यह दैवी गुणयुक्त दीक्षा संयम जीवन दिया ।
- मेरे साहित्य रस को जगाकर मुझे प्रोत्साहित किया ।
- जैन इतिहास का अवलोकन करने के लिए सूक्ष्म दृष्टि दी ।
- जो मेरे जीवन के शिल्पी है ।
- जिनकी मेरे उपर निरंतर आशिर्वाद की वृद्धि होती रही है... ऐसे परम करुणासागर

पूज्य गुरुदेवश्री के कर कमलों में
“जैन आचार्य हीरसूरीश्वरजी और सम्राट अकबर”
नामक पुस्तक समर्पण करता हूँ ।

आपका कृपापात्र अन्तेवासी
आ. भानुचंद्रसूरि

श्री १०८ पार्श्वनाथ भक्ति विहार जैन ट्रस्ट - शंखेश्वर,
ता. ७-५-२००६, वैशाख सुद १०
(आचार्यपद प्रदान दिन)

पूज्य पिता मुनिराजश्री...

हे उपकारी !... आपको कैसे भूल सकता हूँ । मेरे परम उपकारी, मुझे दीक्षा दिलानेवाले । मेरे जीवन के घडवैया, मेरे पिता मुनिश्री, परम वैरागी मोक्षैकलक्षी, संपूर्ण कुटूंब के १६ व्यक्ति के साथ दीक्षा लेनेवाले, परमपूज्य १००८ मुनिराज श्री वीरविजयजी महाराज साहब (दारव्हावाले) के चरणों में भावपूर्वक वंदन करते हुए । यह जैन इतिहास का अद्भूत ग्रंथ “जैन आचार्य श्री हीरसूरीश्वरजी और सम्राट अकबर” यह पुस्तक संपादन करते हुए अत्यंत आनंदीत हूँ । आपका हमेशा आशीर्वाद एवं कृपादृष्टि बनी रहे ऐसी नम्र विनंति के साथ ।

मु. शंखेश्वर तीर्थ

आपके चरणों का दास,
आचार्य श्री भानुचंद्रसूरि

मातृऋण स्मरण

इस संसार में सबसे प्रथम उपकारी माता होती है । जो जन्म देकर पालन पोषण करके अपने संतान को प्रेम एवं संस्कार का दान देकर अपने संतान को परम समृद्ध करती है । ऐसे मेरे परम उपकारी वात्सल्यमयी, संयमप्रेरक, मेरे उद्घारक माता साध्वीजी श्री तीर्थश्रीजी म.सा. जिन्होंने स्वयं ने दीक्षा ली । अपने पूरे परिवार के संतानों को दीक्षा दिलवाई । ऐसा अद्भूत कार्य तो बहुत कम माताओं के भाग्य में होता है । दीक्षा के बाद हमेश सुंदर संयम पालनहेतु समय समय पर प्रेरणा एवं आशीर्वाद जिन्होंने मुझे देकर मेरे पर उपकार की वृष्टी की है । ऐसे मातृः साध्वीजी तीर्थ समान तीर्थश्रीजी को स्मरण करते हुए प्रार्थना करता हुँ की आप जहाँ भी हो ऐसी कृपा करों की मै निरंतर मोक्ष मार्ग में आगे बढ़ता रहूँ ।

मु. शंखेश्वर तीर्थ

आपके चरणों का दास,
आचार्य श्री भानुचंद्रसूरि

संपादक
की
ओर से

“जैन आचार्य हीरसूरीश्वरजी और सम्राट अकबर” पुस्तक प्रकाशित होते हुए अत्यंत आनंदित हुँ । यह सब गुरुदेवों की कृपा है । सभी वाचक वर्ग को नम्र निवेदन करता हुँ । जीवन की उन्नति के लिए अच्छा साहित्य अवश्य पढ़ना चाहिए । प्रस्तुत पुस्तक जैन इतिहास का अद्भुत ग्रंथ है । जिसकी साक्षी १५० ग्रंथ दे रहे है । इसमें समेत-शिखरजी, सिद्धाचलजी, आबुजी, तारंगाजी,

गिरनारजी ये पाँचों तीर्थ तपागच्छ के जैनाचार्य श्री हीरसूरीश्वरजी म.सा. को सम्राट अकबर ने भेट दीये है । यह प्रकरण अवश्य पढ़ने हेतु वाचक वर्ग से खास मेरा निवेदन है । किताब के पीछे अकबर के फरमान छपे हुए है । खास देखे । श्री तपागच्छ के जैनाचार्य इनके मुख्य २२ शिष्यों के लगातार २२ चातुर्मास अकबर बादशाहने दिल्ली, आगरा, फतेपुरसिंक्री में करवाये है । और २२ वर्षों तक निरंतर जैनमुनि के उपदेश श्रवण से सम्राट अकबर परम द्यामय बना और जैन धर्म का परम प्रेमी बना । परम उपकारक हीरसूरीश्वरजी म.सा. ने इस भारतवर्ष की प्रजा को कल्पनातीत अत्याचार, त्रास, हिंसा, लुटफाट, आगजनी से बचाया है । करोड़ों हिंदु को मुस्लीम होते हुए बचाया है । यह जैन मुनि का छोटा उपकार नहीं है । यह बहुत बड़ा उपकार है । वाचक वर्ग इसे खास ध्यान में ले ।

अंत में इस प्रकाशन हेतु सभी दानदाताओं को धन्यवाद देता हुँ । प्रस्तुत पुस्तक प्रकाशन “धर्मतीर्थ मानवसेवा ट्रस्ट” अमदाबाद के ट्रस्टी श्री रमणभाई, श्री रसीकभाई चोवटीया (भंडारवाले), हाल मुंबई आदि को मैं धन्यवाद देता हुँ की इस तरह अनेक उपयोगी साहित्य छपवाते रहो । इस अवसर पर परम पूजनीय विद्वान मुनिराज

व्याख्यानकार प.पू. १००८ की विद्याविजयजी म.सा. को वंदना करते हुए ऋण स्वीकार करता हुँ की आपकी हिन्दी पुस्तक का यह पुनर्मुद्रण होने जा रहा है। मेरे हर कार्य में महत्त्व प्रेरणा एवं मुझे उत्साहीत करनेवाले मेरे भाई म.सा. पू. हेमचंद्रविजयजी म.गणि, श्री देवचंद्र, नूतन गणीश्री कुलचंद्रविजयजी (के.सी.) महाराज साहब, मुनिश्री भक्तिरत्नविजयजी म.सा. जिन्होंने पुफ संशोधन करने में मुझे मदद की है। और मेरे शिष्य सेवाभावी मुनि श्री भाग्यचंद्रविजय म.सा. का साथ सहकार प्रशंसनीय रहा।

साथ साथ मेरी संसारी बहने, परम विनयी पू. प्रवर्तिनी साध्वीवर्या श्री विद्युत्प्रभाश्रीजी म. की शिष्या सा. अमीरसाश्रीजी म.सा., साध्वीजी श्री सुयशप्रज्ञाश्रीजी म.सा., सा. श्री सौम्यप्रज्ञाश्रीजी म.सा. विनीतप्रज्ञाश्रीजी, जीनदर्शनाश्रीजी म., सा. श्री दिव्यदर्शनाश्रीजी म.सा., सा. राजरत्नाश्रीजी म.सा., सा. श्री राजप्रज्ञाश्रीजी म.सा. आदि ने बड़ा परीश्रम इस प्रकाशन हेतु लिया है। अतः इस प्रसंग पर उन्हें कैसे भूल सकता हुँ।

पूज्यपाद आ. श्रीमद् विजयप्रेमसूरीश्वरजी म.सा. की पावन निशा में पू. पं. श्री हेमचंद्र वि. म.सा., पू. पं. श्री रत्नशेखर वि. म.सा. का आचार्य पदप्रदान शंखेश्वर में वै. सुद १० के रोज होगा। इसी प्रसंग पर इस पुस्तक का विमोचन होने जा रहा है। यह एक अत्यंत खुशी का विषय है।

अंत में इस पुस्तक संपादन के कार्य में कोई त्रुटी हो, व परमात्मा के आज्ञा विरुद्ध लिखा हो तो मिच्छामि दुक्कडम्।

मू. पौ. शंखेश्वर

लि.
आचार्य भानुचंद्रसूरीश्वरजी म.सा.

हर पुस्तक के मुख्य सहयोगदाता

भाववर्धक श्री सुपार्श्वनाथस्वामी श्व. मू. जैन संघ
पालडी, अमदाबाद।

(राज.) बरलूट निवासी
शेठ श्री पन्नालालजी वैद्य।

श्री राजकोट जैन तप. संघ - राजकोट।

• • • •

श्री पंचवटी श्व. मू. तप. जैन संघ - राजकोट।

• • • •

श्री कालावाड रोड श्व. मू. जैन तप. संघ-राजकोट।

• • • •

श्री प्लोट श्व. मू. पू. जैन तपगच्छ संघ - राजकोट।

• • • •

श्री जागनाथ श्व. मू. जैन संघ - राजकोट।

• • • •

श्री उमरपार्क श्व. मू. जैन संघ - वार्डन रोड, मुंबई।

दो... शब्द...

जगत की समस्त व्यष्टियों एवं समष्टियों के पतन और ऊत्थान के कारण तात्कालिन शासक एवं धर्माचार्यों को मानना ठीक रहेगा । क्योंकि पौद्गलीक रूप से तथा सामाजिक रूप से हमारा जैसा आदर्श होता है । हम भी क्रमशः ऊसी रूप से परिणत होते जाते हैं । क्योंकि जगत अनुकरण प्रधान है ।

किन्तु यदि अनुकरणीय का आदर्श हमारे व्यष्टि और समष्टि को उपलब्ध नहीं है तो शासकों का ही दोष होगा ।

चाहे वो धार्मिक हों या सामाजिक । ऊसी प्रकार से शासक के योग्य-अयोग्य शासक का भी अच्छा प्रभाव पड़ता है ।

यदी शासक स्वयं अयोग्य होवे या उसका शासन धर्म संमत न होवे तो समाज के सामने एक महान संकट पैदा हो जाता है । क्योंकि अनुशासन से ही व्यक्ति एवं समाज का सुधार होता है । यदी शासक वर्ग स्वयं अपने को आदर्श रूप से समाज के सामने प्रस्तुत करे तो यह और भी अच्छा होगा ।

जिस समय इस देश में महान जैनाचार्य श्री हीरसूरीश्वरजी (तपागच्छीय) का धर्मशासन चल रहा था उस समय इस देश में मुगल सम्राट अकबर राज्य कर रहा था । धर्मगुरुओं को जब यह लगता है कि शासक समाज की रक्षा करेगा । अच्छी दिशा प्रदान करेगा ।

और जनता में बंधुत्व का काम करेगा तब तक धर्मगुरु लोग शासन व्यवस्था में दखल नहीं करते । किन्तु धर्मगुरुओं को जब यह लगता है कि शासक अपनी मर्यादा का उल्लंघन कर रहा है । तब वे अपने सर्वजन हिताय के स्वभाव को नहीं छिपा पाते ।

सम्राट अकबर भी अपने पूर्ववर्ती शासकों के नखों कदम हुए धार्मिक द्वेष को पचा नहीं पाया । और धर्मन्तरण एवं हिन्दु के प्रति विद्वेष

भावना उसका प्रमुख कर्तव्य हो गया । और इसके चलते करोड़ों हिन्दुओं को मौत के घाट उतार दिया । यहाँ तक की हिन्दुओं के देश में हिन्दु होने का टेक्स देना पड़ता था ।

हरीभद्रसूरि और शंकराचार्य ने बौद्ध संस्कृति के आक्रमण से हिन्दुओं को बचाया । इसी तरह स्वनाम धन्य जैनाचार्य श्री हीरसूरीश्वरजी म.सा. ने मुस्लीम संस्कृति के आक्रमण से इस देश को बचाया ।

अपनी प्रखर साधुता, साधना, तप एवं अद्वितीय योग्यता से बादशाह अकबर को प्रभावित किया । उसको उद्बोधित किया । और सारे हिन्दुस्तान में कल्लखाने बंद करवा दिये । और अपने ही देश में हिंदू होने का टेक्स (जजीया कर) माफ करवा दिया और देश के जानमाल की रक्षा की । बादशाह अकबर का यह संपूर्ण चरित्र पढ़ने से आपको मालुम होगा की वह कितना क्रूर, मायावी, हिंसक था । यह तो चितौड़ की लड़ाई का संपूर्ण बयान पढ़ने से मालुम होता है । ऐसे महान जूल्मी व्यक्ति को हीरसूरीश्वरजी ने उसे सच्ची राह बताई, और ऊसे संपूर्ण नखशीख सज्जन एवं दयालु बनाया । पू. हीरसूरीश्वरजी महाराजजी के प्रभाव से सम्राट अकबर अपने जीवन के पूर्वार्ध में जितना क्रूर और हिंसक था उतना ही अपने जीवन के उत्तरार्ध में सज्जन व दयालु और धर्मिष्ठ बन गया ।

यह देश इतना समृद्ध एवं शक्तिशाली था की कोई भी विदेशी भारत पर आक्रमण का विचार भी नहीं कर सकता था ।

यह देश जब से मुगल बादशाहों की आरामगाह स्थली बन गया और ऐयाशस्थली बन गया, तब से कमज़ोर होता चला गया । उसका परिणाम यह हुआ की यह देश अनगीनत बार लूँटा गया । हर बार निर्दोष कन्यायें यहाँ से ले जा करके मुगल देशों में शाक, भाजी और चौकलेट के भाव में दो दो रुपये में कन्याएँ बेची गई हैं । एक बक्त तो - एक बार की लूँट में ७० हजार लड़कीयाँ हिन्दुस्तान से ले जा कर दो दो रुपये में बेची गईं । मूगलों ने इस देश में अनाचार का नंगा नाच किया । धन लूँटा, इज्जत लूँटी और धर्मस्थानों को नेस्त नाबूद किया । हिन्दुस्तान में इनकी

उपस्थिति खरबूजे और चाकू की दोस्ती के समान हो गई । जिस के कारण यह देश सेंकड़े बरस पराधीन रहा ।

पता नहीं ! अपने गौरव को प्राप्त करने में अब कितने बरस और लगेंगे । कहावत है की “किसीको मिटाना हो तो उसका इतिहास नष्ट करो । इसे चरित्रहीन बनाओ ।” इस देश की पहचान “उसका उच्च चरित्र है” अपने प्राचीन ग्रंथों में लिखा है कि -

“एतद् देशा प्रसूतस्य, सकाशाद्ग्रजन्मः ।
स्वं स्वं चरीत्रं शिक्षेन्, पृथीव्यां सर्वं मानवाः ॥१॥”

चाहे व्यक्ति हो या समाज उसके सर्वांगीण चरित्र की रक्षा होनी चाहिए । अन्यथा अस्तित्व मिट जाएगा । हमारे इस अस्तित्व को बचाने के लिए पू. जैनाचार्य श्रीमद् विजयहिरसूरीश्वरजी का योगदान अवर्णनीय है । अनीर्वचनीय है । हम कभी भूल नहीं सकते ।

क्योंकि ऐसे महापुरुष समय समय पर फरीशता बनकर इस देश की संस्कृति की रक्षा करते आये हैं । आज की नई पिढ़ी को अतीत का गौरव बताना एवं उत्पीड़न के काले पन्नों को दिखाना बहुत जरूरी है । जिससे हमारी युवाशक्ति अपने देश और समाजहित के परीक्षेय में अपना कर्तव्य सुनिश्चित कर सके ।

इसी बात को ध्यान में रखकर मैंने विद्वृद्धि महान तपस्वी, वचन सिद्ध, जैनाचार्य श्रीमद् विजय भानुचन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा से प्रार्थना एवं नम्र विनंती की “गुरुदेव ! कुछ ऐसा आपके लेखनी से समाज के सामने प्रस्तुत हो की आज की युवा पेढ़ी को सही मार्गदर्शन मिले । गुरुदेव ने मेरी प्रार्थना स्वीकारी व उसका प्रतिफल यह पुस्तक आप सभी के सामने है ।”

वैशाख सुद-३, संवत्-२०६२,
श्री-१०८ पार्श्वनाथ भक्ति-
विहार जैन मंदिर,
शंखेश्वर तीर्थ (गुजरात)

लि.
पण्डिताचार्य ज्ञानदत्त पाण्डेय
(व्याकरण, साहित्य, पुराण, इतिहासाचार्य,
एम.ए. संस्कृत, अनुसन्धाता, प्राचार्य
(राजकीय सेवा राजस्थान)

स्वर्गीय श्री हिमांशुविजयजी का अल्पपरिचय

इस पुस्तक में छपे हुए लेखों के लेखक स्व. मुनि श्री हिमांशुविजयजी के जीवन का अल्पपरिचय उनके स्वर्गवास पश्चात् प्रकट हुए अनेक पत्रों द्वारा होता है । उसीका सारांश हम यहाँ आपके सामने प्रस्तुत कर रहे हैं ।

स्व. श्री हिमांशुविजयजी का जन्म मरुभूमि (मारवाड़) के पाडीव (नैनीहाल) गाँव में संवत् १९६० वैशाख में हुआ था । उनकी माता का नाम पार्वती, पिता का नाम बनेचंदजी था । वह बीसा पोरवाल जाती के थे । उनका जन्मनाम हिंमतमलजी था । हिंमतमलजी ने ११ वर्ष की आयु में मारवाड़ी भाषा का साधारण ज्ञान लेकर संवत् १९७१ में साहसपूर्वक पिताजी के पास करनूल जाने का तय किया और करनूलस्थित अपने पिता के साथ पिता के व्यवसाय में इस छोटी उमर में झोंक दिया । साथ-साथ उर्दु का अध्ययन भी शुरू किया । विक्रम सं. १९७४ में उनके पिताजी ने मुंबई में दुकान शुरू की । हिंमतलाल भी उनके साथ मुंबई आए । वहाँ उनका समर्थ ब्रह्मचारी के रूप में परिपक्व हो रहे श्रीयुत चुनीलाल कानूनी के साथ समागम हुआ । वहाँ कानूनी के शब्दों ने हिंमतमल के दिल में त्याग, तप और वैराग्य की भावना उत्तेजित की और उसी में दूसरा निमित्त मिला ‘शास्त्र विशारद’ नवयुग प्रवर्तक श्री ‘विजयधर्मसूरिजी’ कृत ‘ब्रह्मचर्य दिग्दर्शन’ नामक ग्रंथ उनके पढ़ने में आया । १८ वर्ष की उमर में जीवनभर कुमार व्रत पालन करने का निर्णय किया और उसी समय श्री विजयधर्मसूरीश्वरजी मुंबई में पधारे थे । वहाँ पर हिंमतमल जा पहुँचे । उनकी सेवा भक्ति करने लगे । उनसे साधु बनने की इच्छा प्रकट करके साधुपन की माँग करने लगे । किन्तु साधुपन ऐसे थोड़ी ही न मिलता है ? पिता की अनुमति एवं स्वयं की परीक्षा करवाने

की जरूरत थी। हिंम्मतमल २ साल तक सूरजी के पीछे-पीछे घुमते रहे। आखिरकार सूरीश्वरजी ने इंदौर में सं. १९७८ के वैशाख सुन्दर अक्षयतृतीया के करकमलों से दीक्षित साधु श्री हिन्दारुविजयजी अंतिम थे। थोड़े ही दिनों में सूरजी का स्वर्गवास हुआ। उसके पश्चात् आग्रा में उपाध्यायश्री इन्द्रविजयजी की आचार्यपदवी का कार्यक्रम संपन्न हुआ और हिमांशुविजयजी की शिवपूरी में बड़ी दीक्षा होकर जैन समाज में सुप्रसिद्ध वक्ता एवं विचारक मुनिराज श्री विद्याविजयजी के शिष्य बने। अध्ययन की गजब सी लगन उन्हें लगी थी। साथ-साथ सभी धर्मक्रियाओं का कठोर पालन करने में भी आग्रही थे। उन्होंने मुनीराज श्री जयंतविजयजी महाराज के पास संस्कृत व्याकरण का अध्ययन शुरू किया। साथ-साथ जैनसूत्र भी पढ़ने लगे किन्तु उन्हें तो विशेषतः मुख्य ज्ञान की जिज्ञासा थी। उन्होंने काव्य एवं अलंकार शास्त्र का अध्ययन न्यायविजयजी के पास किया। काव्य एवं साहित्यशास्त्र का गहरा अध्ययन कविरत्न पं. शिवदत्तजी के पास पूर्ण किया और दर्शनशास्त्र का अभ्यास श्री वीरत्व प्रकाशक मंडल के प्रधान अध्यापक षड्दर्शनवेत्ता पं. श्री रामगोपालाचार्यजी के पास किया। सम्मतितक तक जैन ग्रंथों का अध्ययन किया। तदूपरांत नैयायिक, वैशेषिक, बौद्ध एवं सांख्यदर्शन के स्वतंत्र ग्रंथों का अध्ययन किया।

कलकत्ता संस्कृत असो. की न्यायतीर्थ तथा साहित्य (काव्य) तीर्थ की परिक्षाएँ भी दी। जैन समाज में २ तीर्थ हुए साधुओं में वह श्री एक ही है। सांख्य शास्त्र और व्याकरण शास्त्र की परीक्षाएँ भी उन्होंने बीच के समय में दी। वर्तमान के देवास के संस्थान के महाराजा के वरद हस्तों से शिवपूरी में एक भव्य महोत्सव के आयोजन में उन्हे तर्कालंकार की पदवी से सम्मानित किया गया। अनेक पत्रिकाओं में जैसे सरस्वती, माधुरी, अनेकान्त,

प्रभात, आत्मानंदप्रकाश, वीर श्वेतांबर जैन, जैन धर्मप्रकाश, जैन मित्र, शारदा, बुद्धप्रकाश पीयुष, जैन प्रकाश, महाराष्ट्रीय जैन, देशीमित्र, खेडा वर्तमान, मुंबई समाचार, सांज वर्तमान गुजरात समाचार आदि साप्ताहिक, दैनिक, मासिक, त्रै-मासिक आदि में इतिहास समालोचन और समाज विषय पर अनेक अनेक महत्व के लेख प्रसिद्ध हुए हैं।

उन्होंने स्वयं के गुरु श्री विद्याविजयजी महाराज के साथ रहकर प्रवचनों द्वारा स्थान-स्थान पर जैन धर्म का प्रचार एवं प्रसार किया था। मालवा, युपी, ब्रजभूमि, बुंदेलखंड, महाराष्ट्र, खान्देश और गुजरात में गुरु के साथ विहार करके साधुता का कठोर पालन किया।

मुनिश्रीजी ने मुख्य रूप से शिवपूरी, मुंबई एवं इंदौर को स्वयं के विद्याभ्यास के क्षेत्र बनाये थे।

उन्होंने धर्मवियोगमाला, जयंतप्रबंध, सिद्धांतरन्तिका, प्रमाणनय तत्वालोक, सिद्धहेमशब्दानुशासन लघुव्रति (संशोधित), जैनिसप्तपदार्थी आदि ग्रंथों का लेखन और संपादन किया। अन्त में मुनि संम्मेलन के समय में गुजरात की राजधानी अहमदाबाद में महाराजश्री पधारे थे उस समय उन्होंने हर उपश्रय में जाकर अपने ज्ञान का विनिमय किया था। जो ज्ञानी थे, ज्ञान के प्रति अभीरुची रखते थे उन सभी को मुनीश्री की जिज्ञासा से बहुत आनन्द हुआ और जो भ्रमीक (मिथ्या) ज्ञानी थे उन्हे यह पसंद नहीं आया। अहमदाबाद से वह गुरु श्री विद्याविजयजी के साथ मारवाड़ की ओर गए। अंतिम चातुर्मास बरलोट में किया। उसके बाद सिंध जैसे मांसाहारी प्रदेश में अहिंसा का बोध देने हेतु स्वयं के गुरु श्री विद्याविजयजी के साथ उस तरफ विहार किया और बीच में ही वह मात्र १२ दिन के बुखार के कारण सं. १९९३ में चैत्र वद्य ५ दि. १-५-३७ के दिन हाला गाँव में स्वर्गवासी हुए। उनके स्वर्गवास के समाचार जहाँ-जहाँ मिलते गए

वहाँ-वहाँ शोक प्रकट करने हेतु शोक सभाओं का आयोजन हुआ। उन्हे जन सागर द्वारा अपित् श्रद्धांजलिओं में से एक श्री बनारसदासजी जैन की श्रद्धांजली नीचे दी गई है। स्व. मुनिश्रीजी के आत्मा को शांति मिले यही इच्छा के साथ पूर्णविराम करते हैं,

वो गया, वो गया, संसार सागर का सहारा वो गया,
रंग में भंग कर गया, दिल का प्यारा वो गया ॥
बाल ब्रह्मचारी था वो, वैराग्य सत् धारी था वो,
न्याय का तीर्थ था वो, अखिर सत् धारा वो गया ॥
विद्याविजय का शिष्य था, जैन का गौरव था,
काव्य का फाजल था, लेखन हारा वो गया ॥
काम, मोह और क्रोध को बचपन से जीता था मगर,
समय जब आकर पड़ा अखिर सहारा वो गया ॥
नाम था हिमांशुविजय, जरूरत थी इस वक्त में,
धोका दिया है वक्त पर, चेतन हारा वो गया ॥
ग्रन्थों की रचना करी तो विद्वान् घबरा गये,
काव्य जब निकले जबाँ से, वो गया तो वो गया ॥
“बागी” पे ऐसा हाथ था, लेखन नहीं इस कलम में,
शांत था, गम्भीर था, जैन दोधारा वो गया ॥

उपरोक्त सभी अभिप्राय स्व. मुनि श्री हिमांशुविजयजी के संबंधी हैं। जब ज्ञान का सागर पूरा भरकर छलक रहा था ऐसे समय में मुनि श्री हिमांशुविजयजी का अकाली निर्वाण हुआ। उसके बाद भारतवर्ष में लगभग सभी सुप्रसिद्ध समाचार पत्रों ने स्वतंत्र टिप्पणी करते हुए मुनिश्री का जो परिचय दिया उसी में से केवल तीन परिचय ही उदाहरण के तौर पर यहाँ दिये हैं।

‘साधुता’ और ‘विद्वत्ता’ यह दोनों ही बातें एक ही व्यक्ति में

लगभग बहूत ही कम दिखाई देती हैं, और उसी में भी केवल तीस वर्ष की उम्र में भारत के जैन-जैनेतर विद्वानों द्वारा प्रशस्ति मिलाना यह तो हिमांशुविजयजी के भाग्य में ही लिखा होगा।

और बड़ी खुबी तो यह है की मारवाड जैसे प्रदेश में जिसे जोरा-मगरा की तरह पहचाने जाते ऐसे प्रदेश में कोई विद्वान उत्पन्न होने की कल्पना मात्र भी नहीं कर सकता। ऐसे प्रदेश में जन्म लेकर मारवाड़ी का साधारण ज्ञान पाने के बाद मुंबई में स्टोडियों के समुदाय में रहना; १८ साल की आयु में एक पुस्तकमात्र के पढ़ने से जीवनज्योति प्रकट होना और एक जगद्विख्यात महापुरुष गुरुदेव श्रीविजयधर्मसूरीश्वरजी महाराज की सेवा में उपस्थित होकर पिता की आज्ञा लेकर दीक्षित होना। इतना ही नहीं परंतु १९७८ से १९८८ लगभग दस साल के अवधी में तो संस्कृत-प्राकृत के विद्वान बनना और साथ में विद्वद्जगत् में प्रसिद्ध होना यह कितनी महान पुण्य प्रकृति, कितना बड़ा उत्साह और कितने अथक परिश्रम का परिणाम होगा इसकी तो सहज ही कल्पना करना असंभव है। स्वर्गीय मुनिश्री का अल्प परिचय ग्रंथप्रकाशक ने तो करवाया ही है उपरांत उनके व्यक्तित्व के लिये उनका संक्षेप में संक्षेप परिचय प्रारंभ के तीन उतारों से सहज ही हो जाता है। इसलिए मुझे उनके विषय में और कुछ कहने जैसा रहता नहीं।

शिवपुरी में श्रीवीरतत्त्व प्रकाशक मण्डल में अध्ययन करने के साथ-साथ जैसे संस्कृत की परीक्षाएँ देने का उनको छंद लगा था वैसे ही सुप्रसिद्ध समाचार पत्रों में लिखने का उत्साह भी उनको बहोत था। महत्वाकांक्षा तो उनके जीवन का एक अग्रिम हिस्सा बन गई थी ऐसा कहे तो भी चलेगा। पढ़ने की इच्छा रखनेवाले विद्यार्थीओं को पढ़ाना, अच्छे-अच्छे विद्वानों के साथ ज्ञान की चर्चा करना, स्वयं का अधिक से अधिक नया नया ज्ञान बढ़ाना, अलग अलग दिशाओं

में प्रगति करना और जिस-जिस विषयों में विचारों का स्फूरण होगा वह सब जगत् के सन्मुख रखना यह उनके जीवन की मुख्य क्रियाएँ थी। यही कारण था की उन्होंने जैनधर्मप्रकाश, आत्मानंदप्रकाश, जैनज्योति, जैन, वीर, प्रभात, जैनमित्र, जैनसत्यप्रकाश, आदि जैन प्रतिकाएँ उपरांत सरस्वती, माधुरी, गंगा, कौमुदी, प्रजाबंधु, पुस्तकालय, साहित्य, शारदा, बुद्धिप्रकाश आदि अजैन मासिक एवं वर्तमान पत्रों में भिन्न-भिन्न विषयों पर अनेक लेख लिखकर विद्वत् समाज में ख्याति प्राप्त की। और इसके साथ उन्होंने विद्वानों को अनेक विषयों पर विचार एवं संशोधन करने के लिये प्रवृत्त किया।

उनका स्वर्गवास यह न केवल मेरे लिये, न ही केवल हमारे समुदाय के लिये किन्तु समस्त विद्वद् समाज के लिये दुःख और बड़े से बड़ी रिक्तता (अपूर्ति) का कारण बन गया था। और उसमें भी उनका स्वर्गवास श्री कराची जैन संघ को तो इतना ज्यादा आधातजनक बना की उसका वर्णन शब्दों द्वारा करना असंभव है। इसीलिए कराची संघ, उनके अन्य स्नेही, मित्र, एवं भक्तों की प्रेरणा से उनका स्मारक निधी (फंड) शुरू किया गया। इसकी शुरुआत कराची में ही हुई और कराची के संघ में अच्छी खासी राशी जमा की, कमिटी बनाई और आगे काम चालु किया।

परंतु इस निधी का उपयोग किस लिये करना यह प्रश्न विचारार्थ था। अनेक महानुभावों द्वारा अनेक प्रकार की सूचनाएँ आयी लेकिन जिनके नाम से यह स्मारक निधी शुरू हुआ उनके व्यक्तित्व का, उनके जीवन के प्रिय विषयों का ख्याल रखकर निर्णय किया गया कि इस निधी का उपयोग 'श्री हिमांशुविजय स्मारक ग्रंथमाला' के रूप में किया जाएँ। इस निधीद्वारा अच्छा-अच्छा साहित्य प्रकाशित करना और वह श्री विजयधर्मसूरि ग्रंथमाला की उपग्रंथमाला बनी रहे ऐसा तय हुआ।

श्री हिमांशुविजयजी ने स्वयं की आयु में जो कुछ साहित्य प्रवृत्ति की थी, वह खास तौर पर ग्रंथों के संपादन करने की, अलग अलग मासिक एवं समाचार पत्रों में लेख लिखने की थी; और उनके संग्रह में अप्रकाशित ऐसे लेखों का एक संग्रह प्रकाशित किया जाए तो अच्छा होगा ऐसा मुझे और मेरे माननीय गुरुभाई शांत मूर्ति मुनिराजजी श्री जयंतिविजयजी को भी लगा।

इसी हेतु उन सभी लेखों में और उनके संग्रह में जो कटिंग फाईल किये हुए थे उन सभी को ईंधर-उधर से इकट्ठा किया गया। उसी का यह परिणाम स्वरूप लगभग ७० जितने लेखों का संग्रह आज विद्वानों के सम्मुख रखने में अपने आपको बड़ा भाग्यशाली समझता हुँ।

इन लेखों का संपादन और उनके विभाग करते समय इस बात का ख्याल रखा गया है की जो लेख थोड़े बहुत अलग किन्तु एक ही प्रकार के थे उनमें से एक एक ही लेख लिये गये हैं। कुछ ऐसे लेख थे जिसमें ऐतिहासिक एवं साहित्यिक महत्व नहीं था उनको भी अलग किया गया।

यह कहना यहाँ अस्थान्य नहीं होगा की श्री हिमांशुविजयजी की मातृभाषा मारवाड़ी थी। चाहे कितना भी विद्वान् व्यक्ति हो अन्य भाषा में लिखते समय अपनी मातृभाषा की झलक का शिकार बने बिना नहीं रह सकता। यदी ऐसा नहीं बना तो भी अन्य प्रांतिक भाषा में सर्वथा निर्दोष तो लिख ही नहीं सकता। श्री हिमांशुविजयजी के गुजराती, हिंदी लेखों में जहाँ-जहाँ मुझे भाषादोष महसूस हुआ वहाँ-वहाँ मैंने भाषाशुद्धि का प्रयास किया है।

कुछ लेखों में स्वयं के व्यक्तित्व का किया गया उल्लेख लेखनकला के अनुकूल नहीं माना जाता। किन्तु अभी अभी अनेक लेखकों में

यह आदत दिखाई देती है। वह त्रुटी क्षन्तव्य मानकर मैंने उसमें कोई सुधारणा नहीं की।

इस ग्रंथ में लिखे हुए लेखों में से आम तौर पर तो सभी लेख विद्वत्तापूर्ण एवं अपूर्व संशोधन के परिणाम स्वरूप लिखे गये हैं। इन लेखों द्वारा विद्वानों को संशोधन करने हेतु बहुत कुछ मिल सकता है।

कुछ-कुछ बातों का स्पष्टीकरण फुटनोट में किया गया है किन्तु कुछ लेख कई वर्षों पहले लिखे जा चुके हैं। उसके बाद के समय में उन बातों में कुछ बदलाव भी हुए हैं। फिर भी जिन-जिन बातों की जानकारी मुझे मिली थी उन सभी में मैंने मुलतः और कई स्थान पर फुटनोट में भी बदलाव किये हैं।

मेरा विचार था की इस पुस्तक की प्रस्तावना किसी बड़े विद्वान साहित्यकार द्वारा लिखवाई जाएँ। परंतु वैसा करने में तैयार हुई पुस्तक को लम्बे समय तक अप्रकाशित रखना तांत्रिक कारणों से हितावह नहीं था। इसी कारण उसकी न्यूनतावाली स्थिति में ही प्रकाशित करना योग्य समझा।

इस पुस्तक में मुनी श्री हिमांशुविजयजी के दिये गये लेखों द्वारा विद्वानों को निश्चित हि लाभ हो यही इच्छा रखकर पूर्णविराम देता हुँ।

जैन मंदिर, रणछोड लाईन,
कराची
ज्ये. व-८, २४६४, धर्म सं १६

विद्याविजय



जैनसाधुओं ने गुर्जरसाहित्य की सेवा सबसे ज्यादा की है। इस बात को वर्तमान के सभी विद्वानों ने, अब स्वीकार कर लिया है। मगर देश सेवा करने में भी जैनसाधु किसी से पीछी नहीं रहे हैं, इस बात से प्रायः लोक अंजान हैं। कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचंद्राचार्य और ऐसे ही दूसरे अनेक जैन विद्वान् हो गये हैं कि जिनका सारा जीवन देश कल्याण के कार्यों में ही व्यतीत हुआ था। यह बात, उनकी कार्यावली का सूक्ष्मदृष्टि से निरीक्षण करने पर, स्पष्टतया मालूम हो जाती है। वे दृढ़तापूर्वक मानते थे कि—“देशकल्याण का आधार अधिकारियों की-सत्ताधारियों की अनुकूलता पर अवलम्बित है।” और इसीलिए उनका यह विश्वास था कि,—“लाखों मनुष्यों को उपदेश देने से जितना लाभ होता है उतना ही लाभ एक राजा को प्रति बोध देने से होता है।” इस मन्तव्य और विश्वास ही के कारण वे मानापमान की कुछ परवाह न करके भी राज-दरबार में जाते थे और राजा-महाराजाओं को प्रतिबोध देते थे। कहाँ प्राचीन जैनाचार्यों की वह उदारता और कहाँ इस जीती-जागती बीसर्वी सदी में भी कुछ जैनसाधुओं की संकोचवृत्ति ?

प्राचीन समय में देशकल्याण के काम करनेवाले अनेक जैनसाधु हुए हैं। उन्हीं में से हीरविजयसूरि भी एक हैं। ये महात्मा सोलहवीं शताब्दि में हुए हैं। इन्होंने जैनसमाज ही को नहीं समस्त भारत को और मुख्यतया गुजरात को महान् कष्टों से बचाने का प्रयत्न किया है और अपने शुद्ध चारित्रबल से उसमें सफलता पाई है। इस बात को बहुत ही कम लोग जानते हैं। थोड़े बहुत जैन हीरविजयसूरि के जीवन से परिचित हैं; मगर उन्होंने सूरिजी के चरित्र का एक ही पक्ष से-धार्मिक दृष्टि से-परिचय पाया है, इसलिए वे भी उनको भली प्रकार पहचानते नहीं हैं। हीरविजयसूरि भले अकबर के दरबार में एक जैनाचार्य की तरह गये हों और भले उन्होंने प्रसंगोपात जैनतीर्थों की स्वतंत्रता के लिए, अकबर को उपदेश देकर पट्टे परवाने करवाये हों; मगर उनका वास्तविक उपदेश

तो समस्त भारत को सुखी बनाने ही का था । जो हीरविजयसूरि के जीवन का पूर्णतया अध्ययन करेगा वह इस बात को माने बिना न रहेगा । 'जज्ञिया' बंद कराना, लड़ाई में जो मनुष्य पकड़े जाते थे उन्हें छुड़ाना (बंदी-मोचन) और मरे हुए मनुष्य का धनग्रहण नहीं करने का बंदोबस्त करना—ये और इसी तरह के दूसरे कार्य भी केवल जैनों ही के लिये ही नहीं थे बल्के समस्त देश की प्रजा के हित के थे । क्यों भुलाया जाता है, भारत के आधार गाय, भैंस, बैल और भैंसों आदि पशुओं की हत्या को सर्वथा बंद कराना, और एक बरस में जुदाजुदा मिलकर छः महीने तक जीवहिंसा बंद कराना, ये भी सभी भारत-हित के ही कार्य थे । इस कथन में अतिशयोक्ति कौन सी है ? जिस पशुवध को बंद करने के लिए आज सारा भारत त्राहि त्राहि कर रहा है तो भी वह बंद नहीं होता, वही पशुवध केवल हीरविजयसूरि के उपदेश से बंद हो गया था । यह क्या कम जनकल्प्यण का कार्य था ? ऐसे महान् पवित्र जगद्गुरु श्रीहीरविजयसूरिजी के वास्तविक जीवनचरित्र से जनता को वाकिफ़ करना, यही इस पुस्तक का उद्देश्य है । इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही इस ग्रंथ की रचना हुई है ।

ई. सन् १९१७ के चातुर्मास में, सुप्रसिद्ध इतिहासकार विन्सेन्ट ए. स्मिथ का अंग्रेजी 'अकबर' जब मैंने देखा, और उसमें हीरविजयसूरि का भी, अकबर की कार्यावलि में, स्थान दृष्टिगत हुआ, तब मेरे मन में इस भावना का उदय हुआ कि, केवल धार्मिक दृष्टि ही से नहीं बल्के ऐतिहासिक और धार्मिक दोनों दृष्टियों से, हीरविजयसूरि और अकबर से संबंध रखनेवाला एक स्वतंत्र ग्रंथ लिखना चाहिए । इस विचार को कार्य में परिणत करने के लिए मैंने उसी चातुर्मास से इस विषय के साधन एकत्र करने का कार्य प्रारंभ कर दिया । जब कार्य प्रारंभ किया था तब, स्वप्न में भी, मुझे यह ख्याल न आया था कि, मैं इस विषय में इतना लिख सकूँगा, मगर जैसे जैसे मैं गहरा उत्तरता गया और मुझे अधिकाधिक साधन मिलते गये वैसे ही वैसे मेरा यह कार्यक्षेत्र विशाल होता गया; और उसका परिणाम यह हुआ कि, जनता के सामने मुझे, अपने इस क्षुद्र प्रयास का फल उपस्थित करने में दीर्घकाल का भोग देना पड़ा । साधुधर्म के नियमानुसार एक वर्ष में आठ महीने तक हमें पैदल ही परिभ्रमण करना पड़ता है इससे भी पुस्तक के तैयार होने में बहुत ज्यादा समय लग गया ।

इस पुस्तक में यथासाध्य, प्रत्येक बात की सत्यता इतिहास द्वारा ही प्रमाणित करनेका प्रयत्न किया गया है । इसीलिए हीरविजयसूरि के संबंध की कई ऐसी बातें छोड़ दी गई हैं, जिन्हें लेखकों ने केवल सुनकर ही बिना आधार के लिख दिया है । मैंने इस ग्रंथ में केवल उन्हीं बातों का मुख्यतया, उल्लेख किया है जिन्हें हीरविजयसूरि ने अथवा उनके शिष्यों ने अपने चारित्रबल और उपदेश द्वारा की-कराई थीं और जिनको जैन लेखकों के साथ ही अन्यान्य इतिहासकारों ने भी लिखा है । इस ग्रंथ को पढ़नेवाले भली भाँति जान जायेंगे कि, हीरविजयसूरि और उनके शिष्यों ने, केवल अपने चारित्रबल और उपदेश के प्रभाव ही से, अकबर के समान मुसलमान सम्राट् पर गहरा असर डाला था । यही कारण था कि जैनों का संबंध मुगल साम्राज्य के साथ अकबर तक ही नहीं रहा बल्के पीछे ४, ५ पीढ़ी तक जहाँगीर, शाहजहाँ, मुरादबख्श, औरंगजेब और आज्मशाह तक-घनिष्ठ रहा था । इतना ही नहीं उन्होंने भी अकबर की तरह अनेक नये फ़र्मान दिये थे । अकबर के दिये हुए कई फ़र्मानों को भी उन्होंने फिर से कर दिया था । ऐसे कुछ फ़र्मानों के हिन्दी एवं अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित भी हो चुके हैं । इनके अलावा हमारे विहार-भ्रमण-के समय, खंभात के प्राचीन जैनभंडारों को देखते हुए, सागरगच्छ के उपाश्रय में से अकबर और जहाँगीर के दिये हुए छः फ़र्मान (जहाँगीर के एक पत्र के साथ) अकस्मात् हमें मिल गये । खेद है कि उन छः फ़र्मानों में से एक फ़र्मान को—जो जहाँगीर का दिया हुआ है; जिसमें विजयसेनसूरि के स्तूप के लिए खंभात के निकटवर्ती अकबरपुर में, चंदू संघवी के कहने से दस बीघे जमीन देने का उल्लेख है, बहुत जीर्ण हो जाने से जिसका हिन्दी अनुवाद न हो सका—मैं इस पुस्तक में न दे सका । शेष असल पाँच फ़र्मान—जो इस पुस्तक में आई हुई कई बातों को पृष्ठ करते हैं—उनके हिन्दी अनुवाद सहित परिशिष्ट में लगा दिये हैं ।

यहाँ यह कहना आवश्यक है कि, यद्यपि अकबर के बाद भी आज्मशाह तक जैनों पर जैनसाधुओं का संबंध रहा था; तथापि अकबर के जितना प्रगाढ़ संबंध तो केवल जहाँगीर के साथ ही रहा था । पृष्ठ २४०-२४१ में वर्णित जहाँगीर और भानुचंद्रजी की भेट तथा परिशिष्ट (ड) का पत्र इस बात को परिपृष्ठ करता है । इस तरह जहाँगीर केवल तपागच्छ के साथु

भानुचंद्रजी और विजयदेवसूरिजी ही को नहीं चाहता था बल्के खरतरगच्छ के साधु मानसिंहजी-जिनका प्रसिद्ध नाम जिनसिंहसूरि था और जिनका परिचय इसी पुस्तक के पृ. १५६ में कराया गया है-के साथ भी उसका अच्छा संबंध था । हाँ पीछे से न मालूम क्यों जहाँगीर उनकी उपेक्षा करने लगा गया था, यह बात जहाँगीर द्वारा लिखे हुए अपने आत्मचरित्र-'तौजा के जहाँगीरी' के प्रथम भाग से मालूम होती है ।

इस पुस्तक का मुख्य हेतु अकबर और हीरविजयसूरि का संबंध बताना ही था । इसलिए अकबर के बाद के बादशाहों के साथ जैनसाधुओं का कैसा संबंध रहा था सो बताने का प्रयत्न मैंने, इस पुस्तक में नहीं किया । मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि, जैसे जैसे विशेष रूप से इस विषय का अध्ययन करने की मुझे सामग्री मिलती गई, वैसे ही वैसे अनेक नई बातें भी मालूम होती गईं । उनमें से यद्यपि कहीं को मैंने इस पुस्तक में स्थान दिया है तथापि अनेक को विवश छोड़ देना पड़ा है । इतिहास के अभ्यासियों से यह बात गुप्त नहीं है कि, जितने हम गहरे उत्तरते हैं उतनी ही नवीन बातें इतिहास में से जानने को मिलती हैं ।

मैं पहले ही कह चुका हूँ कि यह पुस्तक एक ऐतिहासिक पुस्तक है; तो भी मैंने इस बात का प्रयत्न किया है कि, पाठकों को इतिहास की नीरसता का अनुभव न करना पड़े । मेरी नम्र मान्यता है कि,-प्रजा की राजा के प्रति कैसी भावनाएँ होनी चाहिएँ और राजा में किन किन दुर्गुणों का अभाव व किन किन सद्गुणों का सद्ब्राव होना चाहिएँ? इस बात को जानने के लिए इस पुस्तक में चिन्तित अकबर का चरित्र जैसे जनता को उपयोगी होगा; वैसे ही यह समझने के लिए, कि-एक साधु का-धर्मगुरु का-नहीं नहीं एक आचार्य का समाज और देशकल्याण के साथ कितना घनिष्ठ संबंध होता है और संसारी मनुष्य की अपेक्षा एक धर्मगुरु के सिर कितना विशेष उत्तरदायित्व होता है; इस पुस्तक में वर्णित आचार्य श्री हीरविजयसूरि की प्रत्येक बात सचमुच ही आशीर्वादरूप होगी ।

अपने आन्तरिक भक्तिभाव से प्रेरित होकर मैंने जिन महान् प्रभावक आचार्य का जीवन इस ग्रंथ में लिखने का प्रयत्न किया उन्हीं महान् पुरुष का

(हीरविजयसूरि का) वास्तविक चित्र मुझे कहीं से भी प्राप्त न हुआ, इसलिए वह इसमें न दिया जा सका । विवश उनके निर्वाण होने के थोड़े ही दिन बाद स्थापित की हुई पाषाणमूर्ति, जो कि 'महवा' (काठियावाड़) में विद्यमान है, उसी का फोटो इसमें दिया गया है । यद्यपि अज्ञानजन्य प्रचलित रूढि के कारण श्रावकों ने चांदी के टीले लगाकर मूर्ति की वास्तविक सुन्दरता बिगाड़ दी है तथापि यह समझकर इसका फोटो दिया गया है कि, इसके द्वारा वास्तविक फोटो की कई अंशों में पूर्ति होगी । इस पाषाण-मूर्ति के नीचे जो शिलालेख है । वह पूरा यहाँ उद्धृत किया जाता है ।

"१६५३ पातसाहि श्रीअकबरप्रवर्त्तिं सं. ४१ वर्षे फा. सुदि ८ दिने श्रीस्तंभतीर्थवास्तव्य श्रा. पउमा (भा.) पांची नाम्या श्री हीरविजयसूरि-श्वराणां. मूर्तिः का. प्र. तपागछे (च्छे) श्रीविजयसेनसूरिभिः ।"

इस लेख से ज्ञात होता है कि, हीरविजयसूरि के निर्वाण के बाद दूसरे ही बरस खंभात निवासी श्रावक पउमा और उसकी स्त्री पाँची नाम की श्राविका ने यह मूर्ति करवाई थी और उसकी प्रतिष्ठा विजयसेनसूरि ने की थी ।

इस पुस्तक के दूसरे नायक अकबर और उसके मुख्य मंत्री अबुलफ़ज़ूल के चित्र डा. एफ. डब्ल्यू थॉमस ने, 'इंडिया ऑफिस लायब्ररी'-जो लंदन में है-में से पूज्यपाद परमगुरु शास्त्रविशारद जैनाचार्य श्रीविजयधर्मसूरीश्वरजी महाराज के पास भेजकर, इस पुस्तक की शोभा को बढ़ाने में कारणभूत हुए हैं, अतएव मैं उन्हें धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता ।

वर्तमान काल में प्रस्तावना पुस्तक का भूषण समझी जाती है । इसलिए इस पुस्तक की प्रस्तावना या उपोद्घात लिखने का कार्य मेरी अपेक्षा विशेष, गुर्जरसाहित्य का, कोई विद्वान् करे तो उत्तम हो । वे इस पुस्तक के गुणदोष विशेषरूप से बता सकें । इस कार्य के लिए मैंने गुर्जर साहित्य के प्रौढ़ एवं ख्यातनामा लेखक श्रीयुत कन्हैयालाल माणेकलाल मुन्शी बी. ए., एलएल. बी. एडवोकेट को उपयुक्त समझा । वे कार्य में इतने रत रहते हैं कि उन्हें इस कार्य के लिए कहने में संकोच होता था; परन्तु उनके समान तटस्थ लेखक के सिवा इसे कर ही कौन सकता था? अगत्या मैंने उनसे आग्रह किया । अपनी

सज्जनता के कारण वे मेरे आग्रह को टाल न सके। कार्य की अधिकता होते हुए भी उन्होंने उपोद्घात लिखना स्वीकार किया; लिख भी दिया। मुन्नीजी को उनके इस सौजन्य के लिए कौन से शब्दों में धन्यवाद दूँ?

खंभात हाईस्कूल के हैड मास्टर शाह भोगीलाल नगीनदास एम. ए. को भी मैं धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता; क्योंकि उन्होंने अपने हाईस्कूल के फारसी-शिक्षक से इस पुस्तक में दिये हुए फारसी फर्मानों का गुजराती अनुवाद करवा दिया। एलिफन्स्टन कॉलेज बम्बई के प्रॉफेसर शेख अब्दुलकादिर सरफ़राज़ एम. ए. को भी धन्यवाद देता हूँ कि, जिन्होंने परिश्रम करके फर्मानों के अनुवाद ठीक कर दिये हैं। बहाउद्दीन कॉलेज जूनागढ़ के प्रॉफेसर एस. एच. होडीवाला एम. ए. का नाम भी मैं सादर स्मरण किये बिना नहीं रह सकता कि, जिन्होंने पुस्तक के छपते फार्म देखकर मुझे कई ऐतिहासिक सूचनाएँ दे विशेष जानकर बनाया।

अन्त में मैं एक बात को यहाँ स्पष्ट करना चाहता हूँ। वह यह है,-इस ग्रंथ को लिखने में मुझे 'इतिहासतत्त्व महोदधि' उपाध्याय श्री इन्द्रविजयजी (वर्तमान में आचार्य श्री विजयइन्द्रसूरीजी) की मुझे पूर्ण सहायता मिली है। यदि वे सहायक न होते तो मेरे समान अंग्रेजी, फारसी और उर्दू से सर्वथा अनभिज्ञ व्यक्ति के लिए इस ग्रंथ का लिखना सर्वथा असंभव था। इसलिए शुद्ध अन्तःकरण के साथ उनका उपकार ही नहीं मानता हूँ बल्के यह स्पष्ट कर देता हूँ कि, इस ग्रंथ को लिखने का श्रेय मुझे नहीं उन्हें है। शान्तमूर्ति आत्मबंधु श्रीमान् जयन्तविजयजी महाराज का उपकार मानना भी नहीं भूल सकता; क्योंकि उन्होंने प्रूफ-संशोधन करने में मेरी अतीव सहायता की है।

गोडीजी का उपाश्रय,
पायथुनी, बम्बई,
अक्षय तृतीया वीर सं. २४४६

विद्याविजय ।

द्वितीय आवृत्ति

"आधुनिक जैनलेखकों द्वारा लिखे गये ग्रंथों का जनता में चाहिए वैसा आदर नहीं होता" जैन समाज में यह बात प्रायः लोग कहा करते हैं। मगर किसी लेखक ने इस बात की खोज न की कि, ऐसा होता क्यों है? यह कहा जाता है कि जैनेतर लोग पक्षपात के कारण, आदर नहीं करते; यह भी सही है मगर यह भी मिथ्या नहीं है कि, जैनलेखकों की लेखनपद्धति-एकान्त धार्मिक विषय की ही पुष्टि, या 'पुराना वह सभी सत्य'-बताने की पद्धति-भी इसका एक खास कारण है। किसी बात को प्रमाणों द्वारा पुष्ट न करके "दो सौ वरस पहले अमुक बात हुई थी" "अमुक ऐसा किया था" इसलिए उसको मानना ही चाहिए, हमें भी करना ही चाहिए; इस तरह का आग्रह यदि जनता को आकर्षित न कर सके तो इसमें आश्वर्य की बात ही कौन सी है?

मैंने इस बात को ध्यान में रख कर ही यह ग्रंथ लिखा था और इसीलिए प्रथम संस्करण की भूमिका में मैंने लिखा था कि,-

"इस ग्रंथ को लिखने में हरेक बात की सचाई इतिहास द्वारा प्रमाणित करने ही का प्रयत्न किया गया है। इसीलिए हीरविजयसूरि से संबंध रखनेवाली कई बातें-जो केवल किंवदन्तियों के आधार पर कुछ लेखकों ने लिखी हैं-इस ग्रंथ में छोड़ दी गई हैं। मैंने इसमें मुख्यतया केवल उन्हीं बातों का उल्लेख किया हैं जिन्हें जैन लेखकों के साथ ही जैनेतर लेखकों ने भी एक या दूसरे रूप में स्वीकार किया है।"

मुझे यह लिखते हर्ष होता है कि, मेरी इस मनोवृत्ति और धारणा के अनुसार लिये गये इस क्षुद्र प्रयत्न का जनता ने अच्छा आदर किया है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि, भारत के हिन्दी गुजराती एवं बंगाला के प्रायः प्रसिद्ध पत्रों ने एवं विद्वानों ने इस कृति को मीठी नजर से देखा है और इसके विषय में उच्च अभिप्राय दिये हैं; कई पत्रों ने इसके उद्धरण लिये हैं। यहाँ तक कि, 'प्रवासी' के समान बंगाला के प्रसिद्ध मासिकपत्र में भी इसके आधार से लिखे हुए बड़े बड़े लेख प्रकाशित हुए हैं। जनता का यह आदर मेरे क्षुद्र प्रयत्न की

सफलता-चाहे वह थोड़े अंशो ही में क्यों न हो-बताता है। इससे प्रसन्न होना मेरे लिए स्वाभाविक बात है। दूसरी तरफ जैन समाज भी-जो अपने इन महान् परम प्रभावक आचार्य को उनके वास्तविक-स्वरूप में न देख सका था-मेरे इस प्रयत्न से सूरजी को वास्तविक स्वरूप में देख सका है और अब तक जिन्हें वह एक सामान्य आचार्य या साधु समझता था उन्हें वह महान् पुरुष समझ उनकी जयन्ती मनाने लगा है; यह बात भी मेरे लिए प्रसन्नता की है।

इस तरह यह ग्रंथ एक इतिहास-मुख्यतया जैन इतिहास-ग्रंथ होने पर भी इसने जैन और जैनतरों में अच्छा आदर पाया है। यही कारण है कि प्रकाशक क इतनी जल्दी इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित करना पड़ा है। दूसरा संस्करण यद्यपि छपकर बहुत दिन से तैयार रखा था तथापि एक नवीन फर्मान का-जो इसके अंदर परिशिष्ट 'च' में दिया गया है-अनुवाद न हो सका इससे तथा कई अन्य अनिवार्य कारणों से इसको प्रकाशित करने में बहुत विलंब हो गया।

प्रथमावृत्ति की अपेक्षा इस आवृत्ति में यह विशेषता है कि, इसमें एक फर्मान नया दिया गया है।

खंभात से मिले अकबर और जहाँगीर के छः फर्मानों में एक फर्मान-जो जहाँगीर का दिया हुआ है-अति जीर्ण होने एवं उसका अनुवाद संतोषकारक न हो सकने के कारण प्रथम संस्करण में नहीं दिया गया था; हाँ उसका उल्लेख प्रथम संस्करण की भूमिका में जरूर कर दिया गया था; वही फर्मान इस बार परिशिष्ट 'च' में दे दिया गया है। अन्य पाँच फर्मानों की भाँति यह फर्मान भी जैन इतिहास में बहुत महत्व का है। हीरविजयसूरि के प्रधान शिष्य विजयसेनसूरि का स्वर्गवास खंभात के पास का अकबरपुर में हुआ था। उनका स्मारक कायम रखने के लिए, स्तूपादि कराने को, दश वीघा जमीन का एक टुकड़ा चंदू संघवी ने बादशाह जहाँगीर से माँगा था। बादशाह ने 'मदद-ई-मुआश' जागीर के रूप में, अकबरपुर ही में उतनी जमीन का भाग दे दिया था।

इस पुस्तक के २३८ वें पृष्ठ में जिस बात का उल्लेख हैं उसको यह फर्मान अक्षरशः प्रमाणित करता है। पाठक देखेंगे कि इस फर्मान में केवल भूमि देने की ही बात नहीं है; इसमें उसके शरीर की आकृति का और उसने कैसे मौके

पर जमीन माँगी थी इसका भी पूर्ण उल्लेख है। अतः यह फर्मान विजयसेनसूरि के स्मारक के साथ घनिष्ठ संबंध रखनेवाला होने से ऐतिहासिक सत्य को विशेष दृढ़ करता है।

यह फर्मान बहुत जीर्ण था, इसलिए इस का अनुवाद करना अत्यंत कठिन था, तो भी पंजाब के बयोवृद्ध मौलवी महम्मदमूनीर ने अत्यधिक परिश्रम करके इसका अनुवाद कर दिया; इसी तरह शिवपुरी के तहसीलदार नवाब अब्दुलमुनीम उसकी जाँच कर दी इसके लिए उक्त दोनों महाशयों को धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता।

अन्त में-जगद्गुरु हीरविजयसूरि केवल जैनों ही के नहीं बल्के भारतवर्ष के उद्धारक एक महान् पुरुष थे। अकबर के समान मुसलमान सप्राट से परिचय कर देश के अभ्युदय में उन्होंने बहुत बड़ा योग दिया था। और वस्तुतः देखा जाय तो समाज और देश के कल्याण के साथ, साधुओं को-आचार्यों का-धर्मगुरुओं का संसारी मनुष्यों की अपेक्षा कुछ कम संबंध नहीं हैं। जगद्गुरु श्रीहीरविजयसूरि की तरह, यदि धर्मगुरु समझें तो उनके सिर गृहस्थों की अपेक्षा कई गुणा अधिक उत्तरदायित्व है और अपने उत्तरदायित्व को समझनेवाले धर्मगुरु कदापि यह कहने का साहस नहीं करेंगे कि-“हमारा देश के साथ और स्वदेशी के साथ क्या संबंध है?” कम से कम अपने इन जगत्पूज्य जगद्गुरु के जीवन की प्रत्येक घटना पर ही यदि धर्मगुरु ध्यान दें तो उन्हें बहुत कुछ जानकारी हो सकती है। इसलिए धर्मगुरु हीरविजयसूरि के जीवन पर ध्यान दें, उनके जीवन का अनुकरण करें; जैनसमाज हीरविजयसूरि के माहात्म्य को पहचाने, उनकी महिमा सर्वत्र फैलावे और प्रत्येक गाँव ही में नहीं बल्के प्रत्येक घर में उनकी वास्तविक जयन्ती मनाई जाय, यही हार्दिक इच्छा प्रकट कर अपना कथन समाप्त करता हूँ :

श्रीविजयधर्मलक्ष्मी ज्ञानमंदिर
बेलनगंज, आगरा।

द्वि. ज्य. शु. ५
वीर संवत् २४४९. धर्म संवत् १

उपोद्घात

भारतवर्ष की उन्नति के लिए यहाँ के पहले के राजा-महाराजाओं, विद्वानों, धर्मचार्यों, वीरपुरुषों एवं देशहितैषी धनाढ़यों के जीवनचरित्र के ऐतिहासिक दृष्टि से लिखे हुए ग्रंथों की बड़ी आवश्यकता है। हिन्दी साहित्य में ऐसे प्रामाणिक ग्रंथ अब तक बहुत ही कम दृष्टिगोचर होते हैं। मुनिराज विद्याविजयजी ने 'सूरीश्वर अने सम्राट' नामक जैनाचार्य हीरविजयसूरिजी और बादशाह अकबर के संबंध का एक अपूर्व ग्रंथ गुजराती भाषा में अनुमान तीन वर्ष पूर्व प्रकाशित कर गुर्जरसाहित्य की बड़ी सेवा बजाई थी और उनका ग्रंथ बड़ी खोड़ और ऐतिहासिक दृष्टि से एवं विद्वतापूर्ण लिखा हुआ होने से साक्षर गुर्जरवर्ग में बड़े महत्व का माना गया और तीन वर्ष के भीतर ही उसका दूसरा संस्करण छपवाने की आवश्यकता हुई। ऐसे अमूल्य ग्रंथ का हिंदी अनुवाद आगे की श्री विजयधर्मलक्ष्मी ज्ञानमंदिर नामक संस्था ने प्रकाशित हिन्नी साहित्य की श्रीवृद्धि करने का प्रशंसनीय उद्योग किया है।

मूलग्रंथ के लेखक मुनिराज विद्याविजयजी ने धार्मिक दृष्टि की अपेक्षा ऐतिहासिक दृष्टि की और विशेष ध्यान दिया है और अनेक संस्कृत एवं प्राचीन ऐतिहासिक ग्रंथों तथा रासों का पता लगाकर स्थल स्थल पर उन ग्रंथों के अवतरण देकर इस ग्रंथ का महत्व और भी बढ़ा दिया है। अकबर बादशाह के अनेक जीवनचरित्र अंग्रेजी, हिन्दी, गुजराती, बंगला आदि भाषाओं में लिखे गये हैं, परन्तु जैन आचार्यों का प्रभाव उस बादशाह पर कहाँ तक पड़ा और उनके उपदेश से जीवहिंसा को रोकने तथा लोकोपकार का कितना प्रयत्न उक्त महान् बादशाह ने किया इसका वास्तविक वृत्तान्त किसी प्रकाशित ग्रंथ में नहीं मिलता। अलबत्तह विन्सेंट स्मिथ महाशय ने अपने 'अकबर दी ग्रेट मुग़ल' नामक पुस्तक में इस विषय पर थोड़ा सा प्रकाश डाला है जो पर्याप्त नहीं है। जैन आचार्यों की पहले ही से इतिहास की तरफ़ रुचि है और उन्होंने कई महापुरुषों के जीवनचरित्रों

का, जो कुछ उनको मिल सके, अनेक पुस्तकों में संग्रह कर इतिहास प्रेमियों के लिये बड़ी सामग्री रखे छोड़ी है। ऐसे ग्रंथों में 'कुमारपालचरित', 'कुमारपालप्रबन्ध', 'प्रबन्धचिन्तामणि', 'चतुर्विंशतिप्रबन्ध', 'विचारश्रेणी', 'हंमीरमदमर्दन', 'द्व्याश्रयकाव्य', 'वस्तुपालचरित' आदि संस्कृत ग्रंथों से मध्ययुगीन इतिहास की कई बातों की रक्षा हुई है। ऐसे ही कई 'रास', 'सज्जाय' आदि पुरानी गुजराती अर्थात् अपभ्रंश भाषा के ग्रंथ लिखकर पुराने गुजराती साहित्य की सेवा के साथ उन्होंने अनेक महापुरुषों के चरित्र अंकित किये हैं। इन आचार्यों ने केवल इतिहास और साहित्य की ही सेवा नहीं की किन्तु लोगों को धर्मचरण में प्रवृत्त कर उनको सदाचारी बनाने का निःस्वार्थ बुद्धि से बड़ा ही यत्न किया है।

ऐसे अनेक जैन धर्मचार्यों में हीरविजयसूरि भी एक प्रसिद्ध धर्मप्रचारक हुए। इनकी प्रतिष्ठा अपने समय में ही बहुत बड़ी और कई राजा महाराजा इनका सम्मान करते रहे और बादशाह अकबर ने भी बड़े आग्रह के साथ इनको गुजरात से अपने दरबार में बुलाकर इनका बड़ा सम्मान किया। जैसे अकबर बादशाह ने मुसलमानों के हिजरी सन् को मिटाकर अपनी गद्दीनशीनी के वर्ष से गिनती लगाकर 'सन् इलाही' नामक नया सन् चलाया और मुसलमानी महीनों के स्थान में ईरानी महीनों और तारीखों के नाम प्रचलित किये वैसे ही इस्लाम धर्म की जगह दीन-इ-इलाही नाम का नया धर्म चलाना चाहा। उसी समय से वह हिन्दुओं, पारसियों, ईसाइयों और जैनों आदि के धार्मिक सिद्धान्तों को जानने के लिये उन धर्मों के ज्ञाता उत्तमोत्तम विद्वानों को अपने दरबार में सम्मानपूर्वक बुलाकर उनके सिद्धान्तों को सुनता और उन पर विवाद करता। बादशाह का यह उद्योग अपने विचारे हुए नये धर्म के सिद्धान्तों को स्थिर करने के लिये ही था। जैनधर्म के सिद्धान्तों को सुनने के लिये हीरविजयसूरि, शान्तिचंद्र उपाध्याय, भानुचंद्र उपाध्याय और विजयसेनसूरि आदि जैन तत्त्वज्ञों को समय समय पर अपने दरबार में बुलाया, इनमें हीरविजयसूरि मुख्य थे। बादशाह अकबर ने जैन धर्म के सिद्धान्तों को सुनकर धर्मरक्षा, जीवदया आदि लोकहित के अनेक कार्य किये और इन्हीं धर्मगुरुओं के प्रभाव से वर्षभर में ६ महीनों तक

अलग अलग समय पर अपने राज्यभर में जीवहिंसा को रोक दिया, जिसके लिये कुछ मुसलमान इतिहासलेखकों ने उसको भला बुरा भी सुनाया है। ऐसे ही जैनतीर्थों के संबंध के कई फ़रमान भी दिये थे जिनमें से कुछ पहले भी प्रसिद्ध हुए और ६ इस पुस्तक के परिशिष्ट में अनुवाद सहित छपे हैं। जिनसे अकबर की धर्मनीति का परिचय मिलता है। अकबर के समय से जैन धर्मचार्यों का बादशाही दरबार में सम्मान होता रहा और जहाँगीर को भी उन पर बड़ी श्रद्धा थी (देखो नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग २, पृ. २४७)।

हीरविजयसूरिजी अपने समय में ही अपनी विद्वता, तपस्या और सद्गुणों से बहुत ही लोकप्रिय हो गये थे और उनका चरित्र देवविमलरचित 'हीरसौभाग्य काव्य' पद्मसागर रचित 'जगद्गुरु काव्य' आदि संस्कृत ग्रन्थों में तथा श्रावक ऋषभदास रचित 'हीरविजयसूरि रास' आदि कितने ही पुरानी गुजराती भाषा के ग्रन्थों में भी अंकित किया गया है। उनकी लोकप्रियता का एक उदाहरण यही है कि उनके स्वर्गवास के दूसरे ही वर्ष स्तंभतीर्थ (खंभात) के रहनेवाले श्रावक पउमा और उसकी स्त्री पाँची ने उसकी पाषाण की मूर्ति भी बनवाई थी जिसकी प्रतिष्ठा विक्रम संवत् १६५३ और अकबर के नये चलाये हुए इलाही सन् ४१ म तपागच्छ के विजयसेनसूरि ने की थी ऐसा उस मूर्ति पर के लेख से पाया जाता है। यह मूर्ति अब काठियावाड के महुवा नामक ग्राम में विद्यमान है।

मुनिराज विद्याविजयजी बड़े भाग्यशाली हैं कि उनको ऐसे प्रसिद्ध आचार्य का जीवनचरित्र लिखने के लिये जैनसाहित्य से बहुत बड़ी सामग्री मिल गई जिसके आधार पर एवं अन्य भाषाओं की अनेक पुस्तकों से इस ग्रंथरत्न को निर्माण किया। इस ग्रंथ को सर्वांग सुन्दर बनाने के लिये हीरविजयसूरिजी की उपर्युक्त मूर्ति का, स्वर्गस्थ शास्त्रविशारद जैनाचार्य श्री विजयधर्मसूरिजी का, जिनको यह ग्रंथ समर्पित किया गया है, बादशाह अकबर का, शेख अबुलफ़ज़ल का तथा ६ फारसी फरमानों के छायाचित्र (फोटो) और सूरिजी के गन्धार गाँव (गुजरात में) से लगाकर फतहपुरसीकरी

में बादशाह के दरबार में उपस्थित होने तक के मार्ग का सुन्दर मानचित्र भी दिया है। इस ग्रंथ में केवल हीरविजयसूरिजी का ही वृत्तान्त नहीं है किन्तु बादशाह अकबर तथा हीरविजयसूरिजी के शिष्यसमुदाय संबंधी इसमें अनेक ज्ञातव्य बातों पर बहुत कुछ नया प्रकाश डाला गया है। इस ग्रंथ की रचना में यह एक बड़े महत्व की बात है कि इसमें जिन जिन स्थानों या पुरुषों के नाम आये हैं उसका पूरा पता लगाकर टिप्पणी में उनका बहुत कुछ विवरण दिया है। इस ग्रंथरत्न के विषय का विवेचन तो पाठकों को मूल ग्रंथ के पठन से ही होगा। परन्तु यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि इतिहास के ग्रंथ बहुधा नीरस होते हैं, परन्तु यह ग्रंथ पढ़नेवाले को सरस ही प्रतीत होता है और धर्मसंबंधी पक्षपात से भी बहुधा रिक्त है। ऐतिहासिक ग्रन्थों के लेखकों को मुनिराज के इस ग्रंथ का अनुकरण करना चाहिए और यदि इसी शैली से सप्रमाण ग्रंथ लिखे जावें तो वे बड़े ही उपयोगी और महत्वपूर्ण होंगे। मुनिराज से मेरी यह प्रार्थना है कि वे ऐसे ही और ग्रंथ लिखकर इतिहास की त्रुटि पूर्ण करने में अन्य विद्वानों का हाथ बटावें। हिन्दी साहित्य में भी यह ग्रंथ बड़े महत्व का है अतएव उसके कर्ता और प्रकाशक हिंदी सेवियों के धन्यवाद के पात्र है।

अजमेर

ता. १७-१२-२३

गौरीशंकर हीराचंद ओझा

सहायक ग्रंथ-सूची

(गुजराती)

१. मीराते अहमदी-पठान निजामखाँ नूरखाँ का अनुवाद ।
२. मीराते सिकंदरी-आत्माराम मोतीराम दीवानजी का अनुवाद ।
३. मुसलमानी रियासत-सूर्यराम सोमेश्वर देवाश्रयी का अनुवाद ।
४. काठियावाड़ सर्वसंग्रह-
५. मीराते आलमगीरी-ले०, शेख गुलाम महम्मद आबिद मियाँ साहब ।
६. अकबर-गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी का ।
७. फार्बस रासमाला-रणछोडभाई उदयराम का अनुवाद ।

(हिन्दी)

८. सीरोही राज्य का इतिहास-ले०, रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा ।
९. अकबर-इण्डिअन प्रेस अलाहाबाद का ।
१०. अकबर-गवालियर का ।
११. सग्राट अकबर-पं. गुलज़ारीलाल चतुर्वेदी का अनुवाद ।
१२. भारत भ्रमण-श्री वेङ्कटेश्वर प्रेस में मुद्रित ।

(बंगाली)

१३. सग्राट अकबर-श्री बंकिमचंद्र लाहिडी बी.एल. प्रणीत ।
१४. समसामायिक भारतेर उनविंश खण्ड-योगेन्द्रनाथ समाद्वार द्वारा संपादित ।
१५. भारत वर्ष-(मासिक पत्र के कुछ अङ्क)
१६. दरबारे अकबरी-प्रो० आज़ादकृत ।

ENGLISH

17. Akabar by Vincent A. Smith.
18. The Emperor Akabar translated by A.S. Beveridge Vols. I & II
19. Akabar by a Graduate of the Bombay University.
20. Akabar translated by M.M. with notes by C.R. Markham.

21. The History of Aryan Rule in India by E.B. Havell.
22. Al-Badaoni Vol. I translated by George S.A. Ranking. & Vol. II translated by W.H. Love.
23. Akabarnama translated by Beveridge Vols. I, II & III.
24. Ain-i-Akbari Vol. I translated by H. Blochmann & Vols. II & III by H.S. Jarrett.
25. The History of Kathiawad by H.W. Bell.
26. Dabistan translated by Shea and Troyer.
27. Travels of Bernier translated by V.A. Smith.
28. The History of India as told by its own Historians by Elliot & Dowson Vols. I-VIII.
29. Local Muhammadan Dynasties by Bayley.
30. Mirati Sikandari translated by F.L. Faridi.
31. The Early History of India by V.A. Smith.
32. The History of fine art in India in Series by V.A. Smith.
33. Storia do Mogor translated by William Irvine 4 Vols.
34. Ancient India by Ptolemy.
35. History of Oxford by Smith.
36. History of Gujarat by Ddulji Dosabhai.
37. The Mogul Emperors of Hindustan by Holden.
38. The Jain Teachers of Akbar by V.A. Smith. (Printed in R.G. Bhandarkar commemoration Volume.)
39. Catalogue of the Coins in the Punjab Museum, Lahore by R.B. Whitehead Vol. II.
40. Catalogue of the Coins in the Indian Museum, Calcutta Vol. III by H.N. Wright.
41. Architecture of Ahmedabad by T.C. Hope and J. Fergusson.
42. The Cities of Gujarat by Briggs.
43. Journals of the Punjab Historical Society.
44. The Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society Vol. XXI.
45. English factories in India by William Foster. (1618-1621, 1646-1650 & 1651-1654.)
46. Description of Asia by Ogilby.
47. Manual of the Musalman Numismatics by Codrington.

48. The Coins of the Mogul Emperors of Hindustan in the British Museum by Stanley Lane-Poole.
49. Collection of voyages & travels Vol. IV.
50. Tavernier's Travels in India Vol. II edited by V. Ball.
51. The History of the Great Moguls by Pringle Kennedy 2 Vols.
52. The History of Gujarat translated by James Bird.
53. Mediaeval India by Stanley Lane-Poole.
54. The History of India by J.T. Wheeler. Vol. IV part I.
55. Royal Asiatic Society of Great Britain & Ireland (issues of July and October, 1918.)

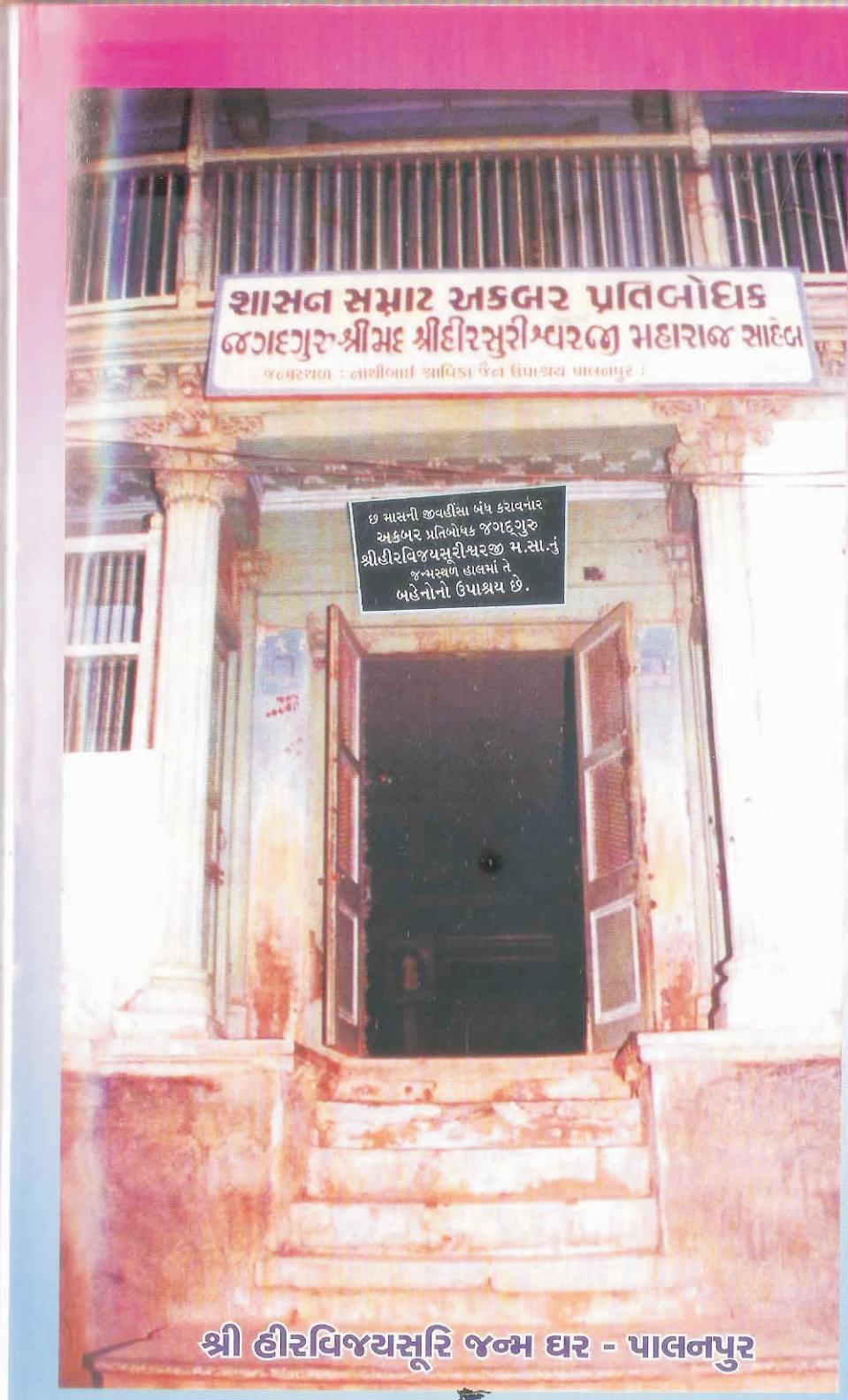
जैनग्रंथ

(गुजराती)

५६. हीरविजयसूरिरास-लेखक, श्रावक कवि ऋषभदास । वि०सं० १६८५।
५७. लाभोदयरास-लेखक, पं० दयाकुशल । वि०सं० १६४९ ।
५८. कर्मचंद चौपाई-लेखक, पं० गुणविनय । वि०सं० १६५५ ।
५९. जैनरासमाला प्रथम भाग-मोहनलाल दलीचंद देसाई द्वारा संपादित ।
६०. तीर्थमाला-संग्रह-शा० जै० श्री विजयधर्मसूरि द्वारा संपादित ।
६१. ऐतिहासिक रास-संग्रह तीसरा भाग- "
६२. श्री विजयतिलकसूरिरास, दो अधिकार-लेखक, पं० दर्शनविजय, सं० क्रमशः १६७९ तथा १६९७
६३. अमरसेन-वयरसेन आख्यान-ले० श्री संघविजयजी वि०सं० १६७९
६४. ऐतिहासिक सञ्ज्ञायमाला भा. १ ला-मूल लेखक (विद्याविजयजी) द्वारा संपादित ।
६५. मलीनाथ रास-लेखक, ऋषभदास कवि । वि०सं० १६०५
६६. खंभातनी तीर्थमाला-लेखक, ऋषभदास कवि । वि०सं० १६०५
६७. खंभातनी तीर्थमाला-ले०, मतिसागर, वि०सं० १७०१
६८. पदमहोत्सवरास-ले०, पं० दयाकुशल वि०सं० १६८५
६९. हीरविजयसूरि शलोको-ले०, पं० कुँअरविजय ।
७०. दुर्जनशाल बावनी-ले०, पं०, कृष्णदास वि०सं० १६५१

७१. हीरविजयसूरि कथा प्रबंध ।
 ७२. पट्टावली सञ्ज्ञाय-ले०, पं० विनयविजय ।
 ७३. जैन ऐतिहासिक गुर्जर-काव्य-संचय-श्री जिनविजयजी द्वारा संपादित (छप रहा है)
 ७४. शिलालेख-संग्रह-श्री जिनविजयजी द्वारा संपादित ।
 ७५. प्राचीनलेख-संग्रह...शा० जै० श्री विजयधर्मसूरि महाराज द्वारा संपादित अप्रकाशित ।
 ७६. प्रश्नोत्तर पुष्पमाला-ले०, श्री हंसविजयजी महाराज ।
 ७७. हीरविजयसूरि सञ्ज्ञाय-ले०, कविराज हर्षनन्द के शिष्य विवेकहर्ष ।
 ७८. परब्रह्म प्रकाश-ले०, विवेकहर्ष ।
 ७९. हीरविजयसूरि-रास (छोटा)-ले०, विवेकहर्ष वि०सं० १६५२
 ८०. विजयचिन्तामणि स्तोत्र-ले०, पं० परमानन्द । विजयसेनसूरि के शिष्य ।
 ८१. महाजनवंश-मुक्तावली-ले०, रामलालजी गणि ।
- (संस्कृत)
८२. हीरसौभाग्यकाव्य, सटीक-ले०, पं० देवविमल ।
 ८३. विजय प्रशस्ति काव्य, सटीक-ले०, पं० हेमविजयजी, टीकाकार । पं० गुणविजयजीगणि, टीका सं. १६८८
 ८४. जगद्गुरुकाव्य-ले०, पं० पद्मसागर ।
 ८५. कर्मचंद्र चरित्र-ले०, पं० जयसोम । सं० १६५०
 ८६. गुर्वावली-ले०, मुनिसुंदरसूरि ।
 ८७. कृपारसकोष-ले०, शान्तिचंद्र उपाध्याय ।
 ८८. सोम-सौभाग्य-काव्य-ले०, पं० प्रतिष्ठासोम सं० १५२४
 ८९. तपागच्छपट्टावली-ले०, रविवर्द्धन ।
 ९०. तपागच्छपट्टावली-ले०, पं० धर्मसागरजी ।
 ९१. तपागच्छपट्टावली-ले०, उपाध्याय मेघविजयजी ।
 ९२. सूर्यसहस्रनाम-ले०, उपाध्याय भानुचंद्रजी ।
- (विविध)
९३. जैनशासननो दीवालीनो अंक-(वि०सं०)

साथ विचरण करतेथे, निःस्वार्थ भाव से उपदेश देते थे, शुद्धमार्ग को प्रकाशित करते थे, और उत्कृष्ट क्रियाएँ पालते थे। इन सब बातोंके अतिरिक्त वे तपस्याएँ भी बहुत ज्यादा किया करते थे। इससे प्रायः श्रावकोंके हृदयोंमें पुनः साधुओं के प्रति भक्तिभावों का संचार हुआ था। साधुधर्म कैसा होना चाहिए? साधुओं के लिए किन किन क्रियाओं का करना आवश्यक है? और साधुओं को किस तरह मोह-मायाका त्याग करना, निःस्पृहताका बक्तर पहिनना और कैसे शुद्ध उपदेश देना चाहिए? आदि बातोंका ज्ञान उन्होंने अपने आचरणों द्वारा दिया था। यद्यपि उन्होंने अनेक प्रदेशों में फिर कर लोगोंको सन्मार्ग पर चलाने का प्रयत्न किया था और उस प्रयत्नमें उन्हे सफलता भी प्राप्त हुई थी, और उनके बोये हुए बीजको फलाने फूलाने में विजयदानसूरिने बहुत कुछ प्रयत्न किया था। तथापि यह तो स्वीकार करना ही पडेगा कि, जिस भाँति समय समय पर राजा महाराजाओं पर प्रभाव डालकर उन्हें सच्चा उपदेश देकर राष्ट्रीय स्थिति को सुधारनेवाले एकके बाद दूसरे जैनाचार्य होते आये हैं उसी तरह मुसलमानों के राज्यकाल में भी एक ऐसे जैनाचार्य की आवश्यकता थी कि, जो अपने प्रबल पुण्य-प्रताप से देशके भिन्न भिन्न अधिकारियों पर और खास करके दिल्लीश्वर पर अपना प्रभाव डालते और भारतवर्षमें-मुख्यतया गुजरातमें लगे हुए 'जजिया' के समान जुल्मी करको नष्ट कराते, अहिंसा प्रधान आर्यवर्तमें बढ़ी हुई जीवहिंसा को बंद कराते, जैनोंको अपने पवित्र तीर्थोंकी यात्रा करने में जो आपत्तियाँ आती थीं उन्हे दूर कराते, और अपने हक तीर्थों के ऊपर से खो चुके थे वे उन्हें वापिस दिलाते। इन कार्यों की महत्तासे यह बात सहज ही समझमें आ जाती है कि, भारतवर्षमें राष्ट्रीय स्थिति सुधारने के लिए जैसे-अपनी प्रजा को पुत्रवत् पालन करनेवाले एक सुयोग्य सम्राट की आवश्यकता थी उसी भाँति देशकी हिंसक प्रवृत्तिको दूर कराने का सामर्थ्य रखनेवाले एक महात्मा पुरुष के अवतार की भी आवश्यकता थी।



विषयसूची

१	प्रकरण पहिला;	
२	प्रकरण दूसरा;	
३	प्रकरण तीसरा;	
४	प्रकरण चौथा;	
५	प्रकरण पाँचवाँ;	
६	प्रकरण छठा;	
७	प्रकरण सातवाँ;	
८	प्रकरण आठवाँ;	
९	प्रकरण नवाँ;	
१०	प्रकरण दसवाँ;	
११	प्रकरण ग्यारहवाँ;	
१२	प्रकरण बारहवाँ;	
१३	प्रकरण तेरहवाँ;	
१४	परिशिष्ट	
१५	परिशिष्ट (क); फ़र्मान नं. १ का अनुवाद	३४६
१६	परिशिष्ट (ख); फ़र्मान नं. २ का अनुवाद	३४८
१७	परिशिष्ट (ग); फ़र्मान नं. ३ का अनुवाद	३५३
१८	परिशिष्ट (घ); फ़र्मान नं. ४ का अनुवाद	३५६
१९	परिशिष्ट (ङ); फ़र्मान नं. ५ का अनुवाद	३६२
२०	परिशिष्ट (च); फ़र्मान नं. ६ का अनुवाद	३६७
२१	परिशिष्ट (छ); पोट्टूगीज्जा पादरी मिनहरो के दो पत्र	३७०
२२	परिशिष्ट (ज); अकबर के समय के सिक्के	३७५
२३	पूर्ति	३८०
	परिस्थिति	३९२
	सूचिपरिचय	१९
	सम्राट् परिचय	३३
	आमंत्रण	७१
	प्रतिबोध	१०१
	विशेष कार्य-सिद्धि	१३६
	सूबेदारों पर प्रभाव	१६९
	दीक्षादान	१९३
	शिष्य परिवार	२१४
	शेष पर्यटन	२४८
	जीवन की सार्थकता	२६१
	निर्वाण	२७२
	सम्राट् का शेष जीवन	२८५
	अकबर बादशाह का फ़र्मान	३४६
	परिवर्तनशील है। इसमें एक भी वस्तु ऐसी दृष्टिगत नहीं होती जो सदैव एक ही स्थिति में स्थित रही हो। एक समय जिस बालक को हम सांसारिक वासनारहित, पालने में झूलता देखते हैं, वही कुछ काल बाद, जवानी के मद से मस्त, सांसारिक मोहक पदार्थों से परिवेष्टित हमें दिखाई देता है, यह क्या है? अपने शरीर-बलके मद से उन्मत्त हो कर जो पृथकी पर पैर रखना भी लज्जास्पद समझता है, वही बुढ़ापे में लकड़ी के सहारे टक टक करता चलता है, यह क्या है? संसार की परिवर्तनशीलता या और कुछ! जिस सूर्य को हम सबेरे ही अपनी प्रखर प्रतापी किरणें फैलाते हुए उदयाचल के सिंहासन पर आरूढ़ होता देखते हैं, वही संध्या के समय निस्तेज हो, क्रोध से लाल बन अस्ताचल की गहन गुफा में छिपता हुआ क्या हमारे दृष्टिगत नहीं होता है? एक समय हम देखते हैं कि, जगत को प्रकाशमय बनानेवाला गगनमंडल स्वच्छ है, निर्मल है। उसको देखने से मनुष्यों की मानसिक शक्तियों में अचानक और ही तरह का विकास- और ही तरह की उत्क्रान्ति हो जाती है। मगर दूसरे समय में क्या हम नहीं देखते कि, वही गगनमंडल, मेघाच्छन्न हो गया है और मनुष्यों के मन और शरीर उसे देखकर शिथिल तथा प्रमादी बन गये हैं? जिन नगरों में बड़ी बड़ी अद्वालिकाओं से सुशोभित महल मकान थे, गगनचुम्बी मंदिर थे, उत्साही मनुष्य थे, महलों और मंदिरों पर स्वर्णकलश दूरदूर से दृष्टिगत हो कर, चित्रविचित्र ध्वजाएँ फर्का	

॥ अर्हम् ॥

जैनाचार्य हीरसूरि और सम्राट् अकबर प्रकरण पहिला । परिस्थिति ।

कर, वहाँ की प्रजा की सुख-समृद्धि की साक्षी दे रहे थे, वे ही आज वन और गुफाएँ दिखाई देते हैं। जहाँ साम्राज्य की दुंदुभिका नाद सुनाई देता था वहाँ आज सियार रो रहे हैं। जिसके घर ऋद्धि-समृद्धि छलकी पड़ती थी वही आज दरदर का भिखारी बन रहा है। जिस मनुष्य के रूप-लावण्य पर जो लोक मुग्ध हो जाते थे आज वे ही उसीको देख कर घृणा से मुँह फेर लेते हैं। लाखों करोंडों मनुष्य जिनकी आँख के इशारे पर चलते थे, उन्हीं चक्रवर्तियों को निर्जन वनों में निवास करना पड़ा है। ये सब बातें क्या बताती हैं? संसार की परिवर्तनशीलता, उदय के बाद अस्त और अस्त के बाद उदय, सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख। इस तरह संसार, अरघट्ठघटीन्याय से, अनादिकाल से चला आ रहा है। सुख और दुःख, दूसरे शब्दों में कहें तो उन्नति और अवनतिका प्रवाह अनादि काल से मनुष्य मात्र पर अपना प्रभाव डालता चला आ रहा है। संसार में ऐसा कोई देश, ऐसी कोई जाति और ऐसा कोई मनुष्य नहीं है कि, जिस पर संसार की इस परिवर्तनशीलता ने अपना प्रभाव न डाला हो। निदान भारत को भी यदि संसार समुद्र के इस परिवर्तनशीलता-ज्वारभाटे में चढ़ना उतरना पड़ा हो तो इसमें आश्र्य ही क्या है?

संसार के बहुत बड़े भाग को जीतनेवाले बादशाह सिंकंदर ने इसी भारत में ऐसे ऐसे खगोलवेता, वैद्य, भविष्यवक्ता, शिल्पी, त्यागी, तत्त्वज्ञानी, खनिजशास्त्री, रसायनविद्, नाट्यकार, कवि, स्पष्टवक्ता, कृषिशास्त्री, नीतिपालक, राजनीतिज्ञ, शूरवीर और व्यापारी देखे थे कि, जिनकी तुलना करनेवाले किसी देश में उसको दिखाई नहीं दिये थे। अभिप्राय यह है कि, सब बातों में भारतवर्ष अद्वितीय था। भारतवर्ष की समता करनेवाला दूसरा कोई भी देश नहीं था। श्रीयुत बंकिमचंद्र लाहिड़ी अपनी 'सम्राट् अकबर' नाम की बंगला पुस्तक के ८ वें पृष्ठ में लिखते हैं कि—

"भारतेर मृत्तिकाय रत्न, स्वर्ण, रौप्य ताम्र प्रभृति जन्मित। जगतेर सुप्रसिद्ध कहिनूर भारतेइ उत्पन्न हइया छिल"। एखानकार वृक्ष लौहर न्याय वट। एखाने पाहाड श्वेत मर्मर, समुद्र मुकाफल, वृक्ष चंदनवास और बनफूल सौगन्ध प्रदान करे। स्वर्णप्रसू भारते किसेर अभाव छिल।"

अभिप्राय इसका यह है कि, भारत की मिट्टी में रत्न, सुवर्ण, चाँदी और ताँबा आदि उत्पन्न होते थे। जगत् प्रसिद्ध कोहेनूर (हीरा) इस भारत में ही उत्पन्न हुआ था। यहाँ के वृक्ष लोहे के समान वट होते हैं। यहाँ के पर्वत संगमरमर, समुद्र मुकाफल, वृक्ष चंदन-वास और बनपुष्प सुगंध प्रदान करते हैं। स्वर्णप्रसू भारत में किस चीज का अभाव था?

इतिहास के पृष्ठ, मथुरा, श्रावस्ति, राजगृही, सोपारक, सारनाथ, तक्षशिला, माध्यमिका, अमरावती और नेपाल के कीर्तिस्थंभ, शिलालेख और ताम्रपत्र आदि इस समय इस बात की सप्रमाण साक्षी दे रहे हैं कि, भारतवर्ष के भूषण समान चंद्रगुप्त, अशोक, संप्रति, विक्रमादित्य, श्रीहर्ष, श्रेणिक, कोणिक, चण्डप्रद्योत, अल्ट, आम (नागावलोक) शिलादित्य, कक्कुक प्रतिहार, वनराज, सिद्धराज और कुमारपाल के समान हिन्दु और जैन राजाओं ने भारतवर्ष की ऋद्धि-समृद्धि को भारतवर्ष में ही सुरक्षित रखा था, भारत की कीर्ति सौरभ को दिग्दिगान्तो में फैलाया था। इतना ही क्यों, अपनी समस्त प्रजा को निज निज धर्म की रक्षा करने और प्रचार करने में सहायता की थी। यही कारण था कि, भारतीय सरल स्वभावी थे। वे प्रेम के एक ही धागे में बँधे हुए थे। प्रजा को अपने धन-दौलत की न कुछ चिन्ता करनी पड़ती थी और न कुछ प्रबंध ही। मंदिरा और ऐसे ही दूसरे व्यसनों से लोग सदा दूर रहते थे। भारतवर्ष का लेन देन प्रायः विश्वास पर ही चलता था। न कोई किसी से किसी तरह की जमानत लेता था और न काई किसी से किसी प्रकार का इकरारनामा ही लिखाता

था। राजा स्वयं जीवहिंसा से दूर रहते थे और प्रजा को भी जीवहिंसा से दूर रखते थे। बहुत से राजाओंने अपने अपने राज्यों में शिकार द्वारा, यज्ञ द्वारा या अन्य भाँति, होनेवाली जीवहिंसा बंद कर दी थी। राजा अशोक ने अपने राज्य में इस बात की घोषणा करवा दी थी कि—“एक धर्मवाला किसी दूसरे धर्मकी-दूसरे धर्मवाले की निंदा न करे।” ऐसी उदारवृत्तिवाले राजा के राज्य में यदि प्रत्येक निर्भीकता से अपना धर्म पालता था तो इसमें कोई आश्वर्य की बात नहीं है। सुप्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य के समयमें भारत जिस उन्नत दशा में था—जैसी इसकी जाहोजलाली थी उससे क्या कोई अनभिज्ञ है? विद्या, विज्ञान और विविध प्रकार की कलाओं का विस्तार इसी प्रतापी राजा के राज्य में हुआ था। आज प्रायः संस्कृतज्ञ विद्वान् सिद्धसेन दिवाकर और कालिदास के समान कवियों के पवित्र नामों का बड़े सत्कार के साथ उच्चारण करते हैं। वे भारत के ज्ञगमगाते हुए हीरे थे और इसी राजा की सभा को सुशोभित करते थे। चित्रकला और भुवन-निर्माणकला भी इसी राजा के समय में बड़े वेग के साथ आगे बढ़ी थी। संगीत, गणित और ज्योतिष विद्या का प्रचार भी विशेष करके इसी राजा के समय में हुआ था।

राजा श्रीहर्ष के समय में भी भारतीय मनुष्य अखंड शान्ति सागर में स्नान कर रहे थे। यह राजा प्रजा के साथ कैसी सहानुभूति रखता था, कैसी उदारता का वर्ताव करता था, उसका हम यहाँ एक उदाहरण देंगे।

प्रत्येक पाँचवें वर्ष प्रयाग में संगम का मेला होता था। उस मौके पर वह सारी सम्पत्ति—जो पाँच बरस में एकत्रित होती थी—भिन्न भिन्न धर्मावल-म्बियों को दान में दे देता था। जिस समय चीनी यात्री हुयेनसांग (Huen Tsiang) भारत में यात्रा करने आया था उस समय राजा हर्ष की प्रयाग यात्रा का छठा उत्सव था। हुयेनसांग भी उसके

साथ प्रयाग गया था। उस समय प्रयाग में पाँच लाख मनुष्य जमा हुए थे। उनमें २० राजा भी थे। पाँच बरस में जो सम्पत्ति एकत्रित हुई थी उसको, राजकर्मचारी ७५ दिन तक दानमें देते रहे। वह धन-सम्पत्ति कितने ही कोठारों में भरी हुई थी। राजाने अपने रत्नजडित हार, कुंडल, माला, मुकुट आदि समस्त आभूषण दान में देदीये थे।

भारत के आर्य राजा की यह उदारता क्या जगत् को आश्वर्य में डालनेवाली नहीं है? इस राजा के समय में भी संस्कृत की बहुत ज्यादा उन्नति हुई थी। यह भी जीवहिंसा का कट्टर विरोधी था। इसने अपने समस्त राज्यमें ढिंढोरा पिटवा दिया था कि—“जो मनुष्य जीवहिंसा करेगा उसका अपराध अक्षम्य समझा जायेगा और उसे मृत्यु दंड दिया जायेगा।”

जिन राजाओं के हमने उपर नाम लिखे हैं उनमें से कई जैन थे और कई जैनधर्म के साथ सहानुभूति रखनेवाले। सम्प्रति नामका राजा पक्षा जैन था। उसने अनार्य देशों में जैनधर्म का प्रचार कराया था। इसमें उसे सफलता भी अच्छी हुई थी। राजा श्रेणिक, कोणिक और चण्डप्रद्योतने जैनधर्म की प्रभावना करने में कोई कमी नहीं की थी। इनको महावीरस्वामी के परम भक्त होने का सम्मान प्राप्त है। राजा आम और शिलादित्यने सम्पूर्णतया जैनधर्म के गौरव की रक्षा की थी। अन्तिम जैन राजा वनराज, सिद्धराज और कुमारपाल आदिने ‘अमारी घोषणा’ कराके अहिंसाधर्म का प्रचार किया था। यह बात किसी से छिपी हुई नहीं है। इस भाँति हिन्दु और जैनधर्म को पालनेवाले राजा ही क्यों? शकडाल, विमल, उदयन, वाग्भट्ट और वस्तुपालके समान प्रतापी राजमंत्री भी थोड़े नहीं हुए हैं कि, जिन्होंने अहिंसा-धर्म के फैलाने का प्रशंसनीय कार्य किया था और जिनका प्रताप समस्त भारत में फैल रहा है।

एक ओर वीरप्रसू भारत माताने ऐसे ऐसे वीर-आर्यधर्मरक्षक

राजाओं को उत्पन्न किया था और दूसरी ओर उसने ऐसे ऐसे सचरित्र और प्रतापी जैनाचार्यों को जन्म दिया था कि, जिन्होंने अपने अगाध पांडित्य का परिचय देकर जगत को आश्वर्य में डाल दिया था। उनकी कृतियाँ आज भी संसार को आश्वर्य में डाल रही हैं। इतना ही क्यों, उन्होंने ऐसे ऐसे असाधारण कार्य किये हैं कि, जिनका करना सामान्य मनुष्यों की तो बात ही क्या है मगर अच्छे अच्छे शक्तिसम्पन्न मनुष्यों के लिए भी दुःसाध्य है। मौर्यवंशीय सम्राट् चंद्रगुप्त को प्रतिबोध करनेवाले चौदह पूर्वधारी श्री भद्रबाहु स्वामी, ५०० ग्रंथों की रचना करनेवाले उमास्वाति वाचक, १४४४ ग्रंथों की रचना करनेवाले हरिभद्रसूरि, हजारों क्षत्रियोंको जैन (ओसवाल) बनानेवाले रत्नप्रभसूरि, अन्याय-लिस गर्दभिल राजा को प्रजा के हितार्थ राजगद्वी से उतार कर उसके स्थान में शक्को राज्यासीन करने की शक्ति रखनेवाले कालिकाचार्य, आम राजा के गुरु होने का सम्मान प्राप्त करनेवाले बप्पभट्टि, 'उपमितिभवप्रपंचा कथा' के समान संस्कृत भाषा में अद्वितीय उपन्यास लिखनेवाले महात्मा सिद्धर्षि, महान् चमत्कारिणी विद्याओं के आगार यशोभद्रसूरि, तार्किक शिरोमणि मल्लवादी, ग्रंथों की विशेष रूप से व्याख्याएँ लिखने में अपनी असाधारण बुद्धि का परिचय देनेवाले मलधारी हेमचंद्र, सिद्धराज जयसिंह की सभा के एक रत्न होने का सम्मान प्राप्त करनेवाले और वादकी अतुल शक्ति के धारक वादिदेवसूरि और कुमारपाल जैसे महान् राजा को उपदेश देकर, अठारह देशों में जीवदया का एक छत्र राज्य स्थापन करनेवाले कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचंद्राचार्य के समान महान् प्रतापी जैनाचार्य रूपी रत्नों को भी इसी भारत वसुंधराने प्रसव किया था। साथ ही पैथदशा, झांझण, जगदुशा, जगसिंह, भामाशा, जावड, भावड, सारंग और खेमा देदराणी के समान लक्ष्मीपुत्रों को भी इसी भारतने अपनी गोद में खिलाया था। इन्होंने अपनी लाखों ही नहीं, करोड़ों ही नहीं बल्कि

परिस्थिति

अब्जोंकी सम्पत्तिको, भारत के भूषणरूप जिनालय बनाने में, आर्यावर्त की शिल्पकला को सुरक्षित रखने में, आर्यबंधुओंका पालन करने में, अपनी मान-मर्यादा को सुरक्षित रखने में, बडे बडे संघ तथा वरघोडे निकालने में और ज्ञान के साधन लुटाने में व्यय किया था। उन्होंने धर्मकी-आर्यधर्मकी रक्षा करने में लक्ष्मीकी तो कौन कहे प्राणों की भी कभी परवाह नहीं की थी। ऐसे आस्तिक और अखूट धन-लक्ष्मी के भोक्ताओं को भी इसी आर्यभूमिने पैदा किया था।

ये बातें क्या बताती हैं? भारत का गौरव? आर्यावर्तकी उत्तमता, दूसरा कुछ नहीं। जिस भारत में ऐसा शान्तिमय राज्य था, ऐसी अद्वितीय विद्याएँ थीं, ऐसे दानशील थे, ऐसे जीवदया प्रतिपालक थे, ऐसी धन संपत्ति थी, ऐसा आनंद था, ऐसी उदारता था, ऐसी विशालता थी, ऐसा प्रेम था, ऐसी धर्मशीलता थी, ऐसी वीरता थी और ऐसे अप्राप्य विद्वान् थे, उसी स्वर्ग समान भारत की आज क्या स्थिति है? भारत का बहुत कुछ अधःपात हो चुका है तो भी आज गई गुजरी हालत में भी वह पूर्ण गौरव से गौरवान्वित है। संसार एक स्वर से कह रहा है कि, एक समय था जब भारत का अनिर्वचनीय था। भारत की वीरता झगग्गा रही थी। प्रकृतिने आदिने वह शक्ति दी थी कि, जिससे यह भारतीय प्रजा 'कर्म' और बात दोनों में असामान्य पौरुष दिखाती थी। ऐसे अपूर्व शान्ति के लेनेवारे आनंदसागर में कल्पोल करती हुई भारतीय प्रजा को संसार की परिवर्तनशीलताने अपना चमत्कार दिखाया। यानी जिसने कभी दुःख के दिन नहीं देखे थे, जिसको अपने आर्यत्वकी रक्षा के लिये किसी भी तरह के प्रयत्न नहीं करने पडे थे उस परम श्रद्धालु आर्य प्रजा पर अचानक पठानों के आक्रमण प्रारंभ हुए। हम जिस समय की स्थिति का वर्णन करना चाहते हैं, वह समय अभी आया न था तब तक तो पठानों भारतकी लक्ष्मी लूटने के मोह में पड़ कर, अपनी क्रूरता से भारत की समस्त प्रजा को त्रसित करना प्रारंभ कर दिया।

जिन पठानोंने इस सिद्धान्त को 'या तो हिंदु लोगों को इस्लामधर्म स्वीकार करायेंगे या उन्हे मौत का शिकार बनायेंगे' सामने रखकर आक्रमण आरंभ किया था, उन्होंने भारतीय प्रजा को कितना सताया होगा, इसका अनुमान सहजही में किया जा सकता है। लाखों निरपराध मनुष्यों को मारना, जीतेजी आर्य राजाओं की खाल खिचवा लेना, शिकार की इच्छा होने पर पशुओं की तरह आर्य प्रजा को घेरना और उसमें आनेवाली स्त्रियोंको, पुरुषोंको और बालकोंको बुरी तरह से-भिन्न भिन्न तरह से मारना, देवमूर्तियों को तोड़ टुकड़े कर, उनके साथ मांस की बोटियाँ बाँध आर्य प्रजाके गले लटकाना आदि नाना प्रकारके दुःखों से समस्त भारत में हाहाकार मच रहा था। पठान राजाओं के त्रास से त्रसित आर्यप्रजा त्राहि त्राहि पुकार उठी थी। बंकिमचंद्र लाहिड़ी अपनी 'सप्राट-अकबर' नामकी पुस्तक में पठानों ने कष्ट दीये थे उनका वर्णन करने के बाद पृष्ठ २४ में लिखते हैं।

"पाठानदिगेर अत्याचारे भारत श्मशानावस्थाये प्राप्त हइल। जे साहित्यकानन नित्य नव नव कुसुमेर सौंदर्य ओ सौगंधे आमोदित याकित, ताहाओ विशुष्क हइल। स्वदेशहितैषिता, निःस्वार्थपरता, ज्ञान ओ धर्म, सकलेइ भारत हइते अन्तर्हित हइल। समग्र देश विपाद ओ अनुत्साहेर कृष्ण छायाय आवृत्त हइल।"

इसका भाव यह है कि—पठानों के अत्याचार से भारत की अवस्था स्मशानसी हो गई। जो साहित्योद्यान—साहित्य बगीचा—सदैव नवीन नवीन पुष्पोंके सौंदर्य और सुगंध से आमोदित रहता था वह भी शुष्क हो गया। स्वदेशहितैषिता, निःस्वार्थपरता और ज्ञान तथा धर्म सबकुछ भारत से अन्तर्धान हो गये। समस्त देश विषाद और अनुत्साह की काली छाया से ढक गया।

भारतवर्ष पठानों के अत्याचारों से पहिले ही त्रस्त हो रहा था

परिस्थिति

उसी समय ईस्वी सन् की चौदहवीं शताब्दि के अन्त में, घटते में पूरी भारत पर और एक आफत आ खड़ी हुई। भारतवर्ष की असाधारण कीर्ति से मध्य ऐश्विया के समरकंद प्रदेश में रहनेवाले तैमूरलंग को ईर्ष्या उत्पन्न हुई। इसलिए वह अपने राज्य से सन्तुष्ट न होकर भारतकी लक्ष्मी को भी अधिकृत करने के लिए लालायित हो उठा। उसने चढाई की, भारत को लूटा, सतियों को सतीत्वभ्रष्ट किया, गाँव के गाँव जला दिये और लोगोंको पशुओं की भाँति तलवार के घाट उतारा और इस तरह उसने भारतकी प्रजा के कष्टों को दुगना कर दिया। इसी लिए तो कहा है कि—

'लोभाविष्टो नरो हन्ति मातरं पितरं तशा।'

अतः जो लोभवृत्ति मातापिता की हत्या करा देती है उस लोभवृत्तिने तैमूरलंग से ऐसे क्रूर कर्म कराये, तो इसमें आश्वर्य ही क्या है? कहा जाता है कि—तैमूरलंगने सिर्फ दिल्ली ही में एक लाख हिन्दुओंकी हत्या की थी। यद्यपि तैमूरलंग के आक्रमण से पठानों के पराक्रम में कुछ न्यूनता आ गई थी और इसलिए उनके अत्याचारों की मात्रामें भी कुछ कमी हो गई थी, तथापि उनका जातीय स्वभाव सर्वथा मिट नहीं गया था। सिकंदर लोदीने देवमंदिरों और मूर्तियों को तोड़ने का कार्य बराबर जारी ही रखा था।

इसी भाँति अनेक विपत्तियाँ झेलते हुए भारतने ईस्वी सन् की पन्द्रहवीं शताब्दि समाप्त की। अब हम सोलहवीं शताब्दि के हाल देखेंगे। प्रस्तुत पुस्तक में हम इसी शताब्दि की स्थिति का दिग्दर्शन करना चाहते हैं।

यद्यपि सोलहवीं शताब्दि प्रारंभ हो गई थी, तथापि भारतवर्ष के दुःख के दिन तो दूर नहीं ही हुए थे। मुसलमान बादशाहों का जुलम जैसा का तैसा ही कायम था। इतना होने पर भी साभिमान यह कहना

पड़ता है कि, भारत में 'आध्यात्मिक भावनाएँ' और 'आर्यत्व का अभिमान' पूर्ववत् ही मौजूद था। भारत की प्रजाने अपनी जातीयता की रक्षा के सामने लक्ष्मी की कोई परवाह नहीं की थी। इतना ही क्यों? उसने 'धर्मरक्षा' को अपना ध्येय बनाकर प्राणोंको भी तिनके के समान समझा था। यद्यपि लोभाविष्ट मुसलमान बादशाहोंने कइबार भारत को लूटा था और लूटका धन लेजाकर अपने घरोंमें भरा था, तथापि भारत सर्वथा ऋष्टि-समृद्धिहीन नहीं हो गया था। उदाहरण के लिए इतिहास के पन्ने उलटो। महमूद गजनवी आदि की लूटके वृत्तान्त उनमें मिलेंगे। कहा जाता है कि, सन् १०१४ ईस्वी में जब उसने काँगड़ा का (जिसको पहिले नगरकोट अथवा भीमनगर कहेते थे।) दुर्ग अपने अधिकार किया था, तब वहाँ से उसे अपार संपत्ति मिली थी। उसमें एक 'चाँदी का बँगला' भी था। इस बँगले की लंबाई ९० फीट और चौड़ाई ४५ फीट थी। वह इकट्ठा हो सकता था, एक जगह से दूसरी जगह ले जाया जा सकता था और जिस समय आवश्यकता होती थी, वह पुनः बँगला बन सकता था।

यह तो एक उदाहरण है। इसी तरह अनेक बादशाहोंने भारतवर्ष को लूट लूट कर खाली कर देनेकी—बरबाद कर देने की चेष्टाएँ की थीं, परन्तु भारतवर्ष को उन लूटों से केवल इतना ही नुकसान हुआ जितना कानखजूरे को उसकी एक टाँग टूटने से होता है, अथवा समुद्र को एक बूँद कम होने से होता है। अतः यदि यह कहा जाय कि, भारतवर्ष की ऋष्टि-समृद्धि में कोई कमी नहीं हुई थी तो अत्युक्ति नहीं होगी। यदि स्पष्ट शब्दों में कहें तो यह है कि, इस समय की अपेक्षा उस समयकी (सोलहवीं शताब्दि की) जाहोजलाली और ही तरह की थी। सारे भारतवर्ष की बात को छोड़कर सिर्फ गुजरात की—उसके मुख्य नगर खंभात, पाटण, पालनपुर और सूरत की—उत्तिका—उसकी असाधारण जाहोजलाली का वर्णन करने का यदि प्रयत्न किया

परिस्थिति

जाय तो वह असंभव न होने पर भी कष्ट-साध्य तो अवश्य है। जो खंभात इस समय निरुद्यमी और निरुत्साही दिखाई देता है, वह उस समय का समृद्धिशाली नगर था। उसकी गगनस्पर्शी ध्वजाओं को देख देखकर ईरान आदि देशों से जहाजों में आनेवाले लोग आश्वर्यचकित हो जाते थे। गुजरात के पाटन के निवासी आज दूर देशोंमें जा कर नौकरी करके या व्यापार-धंधा करके पेट भरने के लिए मजबूर हुए हैं, उसी पाटन के लोग उस समय अपने घरोंमें बैठे बैठे लाखों ही नहीं बल्कि करोड़ों की उथल पाथल किया करते थे। मामूली सा गिना जानेवाला पालनपुर शहर उस समय असाधारण विशाल और समृद्धिशाली था। ऐसे ऐसे अनेक नगर थे जिनके कारण सिर्फ गुजरात ही नहीं बल्कि समस्त भारतवर्ष अपने आपको गैरवशाली समझता था। इतना सबकुछ था तो भी हमें कहना पड़ता है कि, उस समय तक न केवल गुजरातही के लिए बल्कि समस्त भारत के लिए मुख से रोटीका ग्रास खाने का वक्त नहीं आया था। देशकी अशान्ति उस समय तक दूर नहीं हुई थी। भारतकी मनमोहक लक्ष्मी देवी एकके बाद दूसरे मुसलमान बादशाह को ललचाती ही रही थी। जगह जगह अधिकार जमा कर बैठे हुए पठानोंका अत्याचार अभी शान्त भी नहीं हुआ था कि, उसी समय कुछ ही काल पहिले भारतको सता कर गये हुए तैमूरलंगके एक वंशघर बावरकी इस ओर दृष्टि पड़ी। उसने सहसा काबुलके मार्ग पर अधिकार कर भारतमें प्रवेश किया। इतना ही नहीं उसने और उसके पुत्र हूमायुने बार बार आक्रमण कर भारतीय प्रजा को खूब लूटा, सताया और बरबाद किया। अन्तमें श्रापभूता पठानों को भी परास्त किया और भारत में अपना अधिकार पूर्ण रूप से जमा लिया।

बाबरके राज्यकाल में भी भारत तो हतभाग्य का हतभाग्य ही रहा था। देशमें लेशमात्र भी शान्ति नहीं हुई थी। एक तो फतेहपुर-सीकरी की तरफ मुसलमानों और राजपूतों में घोर युद्ध हो रहे थे,

दूसरे लगभग सारे देशमें अराजकता होने से लूट खसोट होती थी, तीसरे भिन्न भिन्न प्रान्तों के सूबेदार अपनी अपनी प्रजाओंको बहुत सताते रहते थे, चौथे तीर्थयात्रा करने के लिए जानेवाले यात्रियोंसे वसूल किया जानेवाला 'कर' और वार्षिक 'जजिया' प्रजा को बरबाद करने के लिए पद पद पर अपना भयंकर रूप धारण किये खड़े ही हुए थे और पाँचवा सामान्य अपराधियोंको भी हाथ पैर काट डालने की, प्राण ले लेने की या इसी प्रकार की अन्य कूर सजाएँ दी जाती थीं। इस प्रकार जिस प्रजा पर चहुँ ओर से भयंकर विपत्ति पड़ रही थी, उस प्रजाके लिए कैसे संभव था कि, वह सत्तोष पूर्वक आहार करती और सुखकी नींद सोती। इस तरह होनेवाले युद्धका भी यहाँ की प्रजा पर असाधारण प्रभाव पड़ा है—छोटे, बड़े, धनी, गरीब, राजा, प्रजा प्रत्येक को उसका परिणाम भोगना पड़ा है। तब जिस समय इसकी आँखों के सामने युद्ध होते थे, रात दिन अत्याचार होते थे उस समय यह यदि कष्टसे दिन निकालती थी, सुखकी नींद न ले सकती थी, रात-दिन इसका हृदय काँपता रहता था तो इसमें आश्वर्यकी बात ही कौन सी है? लगभग ईस्वी सन् की सोलहवीं शताब्दि के आरंभ के ४० बरसो तक बल्कि उसके बाद भी कुछ समय तक भारतवर्षके भिन्न भिन्न भागों में लडाई और लूट-खसोट होती ही रही थी। इससे लोगोंको अपने जानोमालकी रक्षा करना बहुत ही कठीन हो रहा था।

जिस 'जजिया' का ऊपर नाम लिया गया है, वह कोई साधारण कर नहीं था। कई विद्वानों का मत है कि, आठवीं शताब्दि में मुसलमान बादशाह कासिमने भारतीय प्रजा पर यह कर लगाया था। पहले तो उसने आर्यप्रजा को इसलाम धर्म स्वीकार करने के लिए विवश किया। आर्यप्रजाने अटूट धन दौलत देकर अपने आर्यधर्म की रक्षा की। फिर हर साल ही प्रजासे वह रूपया वसूल करने लगा। प्रति वर्ष जो द्रव्य वसूल किया जाता था, उसका नाम 'जजिया' था। कुछ

काल के पश्चात् यहाँ तक हुक्म जारी हो गये थे कि— "आर्यप्रजा के पास खाने-पीने के बाद जो कुछ धन माल बचे वह सभी जजिया के रूपमें खजाने में दाखिल करवा दिया जाय।" फरिश्ते के शब्दोंमें कहे तो— "मृत्यु तुल्य दंड देना ही जजिया का उद्देश्य था।" ऐसा दंड देकर भी आर्यप्रजाने अपने धर्मकी रक्षा की थी। यह बात भी नहीं थी कि, ऐसा असह्य 'जजिया' थोड़े ही दिन तक चलकर बंद हो गया हो। 'खलीफ उम्रने' इसको (जजियाको) तीन भागों में विभक्त किया था। उसके वर्तमान में प्रति मनुष्य वार्षिक ४८, २४ और १२ दरहाम लिये जाते थे। ('दरहाम' उस समय की चलन का एक सिक्का था) ईस्वीसन् की चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दि में भी फीरोजशाह तुगलकने कानून बनाया था कि, गृहस्थों के घरों में जितने बालिग मनुष्य हों उनसे प्रति व्यक्ति धनियों से ४०, सामान्य स्थितिवालों से २०, और गरीबों से १० टांक 'जजिया' प्रति वर्ष लिया जाय। आगे भी यानी जिस सोलहवीं शताब्दि की हम बात कहना चाहते हैं उसमें भी यह 'जजिया' वर्तमान था।

संक्षेप में यह है कि भारतवर्ष की राष्ट्रीय स्थिति भयंकर थी। उसमें भी जिस प्रान्त के लिए हम खास तरह से इस ग्रंथमें कहना चाहते हैं उस प्रान्तकी स्थिति तो बहुत ही खराब थी। गुजरात के सूबेदारों की 'नादिरशाही' गुजरात की प्रजा को बहुत ही बुरी तरह से सताती थी। इच्छानुसार जुर्माना, इच्छानुसार सजा, इच्छानुसार कर, और तुच्छ तुच्छ बातों में धरपकड होती थी। इनसे प्रजा बहुत व्याकुल हो रही थी। उस समय प्रत्येक व्यक्ति का हृदय, राष्ट्रीय स्थिति को सुधारनेवाले किसी महान् प्रतापी पुरुष के—सम्राट के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था। केवल गुजरात ही नहीं बल्कि समस्त भारतवर्ष यही भावना कर रहा था। सारी आर्यप्रजा एक स्वर से रातदिन, सोते जागते, उठते बैठते अपने इष्ट देवों से यही विनय करती थी कि— "प्रभो !

इन दुःख के दिनों को दूर करो ! इस भयंकर अत्याचार को भारत से उठा लो ! हमारे आर्यत्व की रक्षा करो ! देश में शान्ति का राज्य स्थापन करो ! हम अन्तःकरण पूर्वक चाहते हैं कि, इस वीरप्रभू भारतमाता की कूख से, फिर से, तत्काल ही एक ऐसा महान् वीरपुरुष उत्पन्न हो जो देश में शीघ्रता के साथ शान्ति का राज्य स्थापन करे और हमारे ऊपर होनेवाले इस जुल्म को जड़ से खोद डाले ! ओ भारतमाता ! क्या तू शीघ्र ही ऐसा समय न लाएगी कि, जिसमें हम अपने दुःख के आँसू पौछ डालें ? ”

इस मौके पर एक दूसरी बात कहना भी जरूरी है। जैसे देशहित का आधार देश का राजा है, वैसे ही सञ्चरित्र विद्वान् महात्मा भी है। विद्वान् साधु महात्मा जैसे प्रजा के हित के लिए, उसको अनीति से दूर रख सन्मार्ग पर चलाने के लिए, प्रयत्न करते हैं, वैसे ही राजाओं को भी वे निर्भीकता पूर्वक उनके धर्म समझाते हैं। धनिष्ठ संबंधियों का और खुशामदियों का जितना प्रभाव राजा पर नहीं होता है, उतना प्रभाव शुद्ध चारित्रवाले मुनियों के एक शब्द का होता है। इतिहास के पृष्ठ उलटकर देखोगे तो मालूम होगा कि, राजाओं को प्रतिबोध देने में या प्रजा को उसका धर्म समझाने में जो सफल मनोरथ हुए थे वे धर्मगुरु ही थे। उनमें भी यदि निष्पक्ष भाव से कहा जाय तो, कहना पड़ेगा कि,—इस कर्तव्य को पूरा करने में मुख्यतया जैनाचार्य ही विशेष रूपसे आगे आये थे। उन्हींको पूर्ण सफलता मिली थी। और उसका खास कारण था,—उनका सञ्चरित्र और उनकी विद्वत्ता। कौन इतिहासज्ञ नहीं जानता है कि,—संप्रति राजा को प्रतिबोध करने का सम्मान आर्यसुहस्तिने, आमराजा को प्रतिबोध करने का सम्मान बण्डीने, हस्तिकुंडी के राजाओं को प्रतिबोध करने का सम्मान वासुदेवाचार्यने, बनराज को, प्रतिबोध करने का सम्मान शीलगुणसूरिने और सिद्धराज तथा कुमारपालको प्रतिबोध करने का

सम्मान हेमचंद्राचार्यने प्राप्त किया था। ये और ऐसे दूसरे कितने ही जैनाचार्य हो गये हैं कि, जिन्होंने राजा महाराजाओं को प्रतिबोध देकर देशमें शान्ति का और आर्यधर्म के प्रधान सिद्धान्त-अहिंसा का प्रचार करने में सफलता लाभ की थी। इतना ही क्यों? महम्मद तुगलक, फीरोजशाह, अलाउद्दीन और औरंगजेबके समान क्रूर हृदयी व निष्ठुर मुसलमान बादशाहों पर भी जिनसिंहसूरि, जिनदेवसूरि और रत्नशेखरसूरि (नागपुरी) के समान जैनाचार्योंने कितने ही अंशों में प्रभाव डालकर धर्म तथा साहित्य की सेवा की थी।

अभिप्राय कहने का यह है कि, जिस जैनधर्म में समय समय पर ऐसे महान प्रभावक आचार्य होते आये थे उस जैनधर्म पर भी उस समय की (पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दि की) अराजकताने बिजलीकी तरह आश्वर्योत्पादक प्रभाव डाला था। यह बिलकुल ठीक है कि, जहाँ देशभर में हर तरह की बगावत-अराजकता-निर्नाथता-अनुचित स्वच्छंदता का पवन चल रहा हो वहाँ किसी भी तरह की मर्यादा नहीं रहती है। ‘शान्तिप्रिय’ के आदरणीय पद का उपभोग करनेवाले और एकता के विषयमें सबसे आगे रहनेवाले जैन समाज में भी उस समयकी अशान्ति देवीने अपना पैर फैला दिया था। न रहा संघका संगठन और न रही ऐसी स्थिति कि, जिसमें कोई किसीको कुछ कह सकता और कोई किसीकी बात मान लेता। संघ छिन्नभिन्न होने लगा। एक एक करके नये नये मत निकलने लगे। जैसे-१४५२ ईस्वीमें लौका नाम के गृहस्थ ने लौका मत चलाया और मूर्तिपूजा की उत्थापना की। १५०६ ईस्वीमें कटुक नामके गृहस्थने कटुकमत निकाला। विजयने १५१४ ईस्वीमें विजयमतकी स्थापना की। पार्श्वचंद्र ने १५१६ ईस्वीमें पार्श्वचंद्रमत की नीव डाली और १५४६ ईस्वीमें सुधर्म मत उत्पन्न हुआ। आदि। इन मतोंको चलानेवालोंने जैनधर्म के सिद्धांतों में कुछ न कुछ परिवर्तन जरूर किया। जैनधर्म के एक छत्र साम्राज्य को

उन्होंने छिन्नभिन्न कर दिया। इस बात की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता है कि, जिस धर्म के अनुयायियों में आपस में झगड़ा होता है, पारस्परिक विभिन्नता रहती है उस धर्म का भी एक छत्र साम्राज्य रहता है। उस समय जैसे जैसे नवीन मत निकलते गये वैसे ही वैसे परस्पर में नीचा दिखाने का प्रयत्न, आपसी द्वेष और एकका दूसरे पर आक्षेप भी बढ़ता गया। 'अपना सच्चा और दूसरे का मिथ्या' यह नियम प्रत्येक पंथवाले के साथ कार्य कर रहा था। उसीके वश होकर मूल परंपरा को उच्छेद करने के लिये वे कुल्हाड़ी का कार्य कर रहे थे। उन्हें इतनेही से संतोष नहीं होता था। वे जैनों के प्राचीन तीर्थों, मंदिरों और उपाश्रयों पर भी अपना अपना अधिकार जमाने के प्रयत्न करते रहते थे। इसीलिए उस समय भिन्न भिन्न गच्छोंके सभी आचार्य एकबार शत्रुंजय (पालीताना) में एकत्रित हुए और उन्होंने निश्चित किया कि—“शत्रुंजयतीर्थ पर जो मूल गढ़ है वह और आदिनाथ भगवान् का मुख्य मंदिर है वह, समस्त श्वेतांबर जैनोंका है और अवशेष देव-कुलिकाएँ भिन्न भिन्न गच्छवालोंकी है।” आदि।

एक तरफ तो भिन्न भिन्न मतों और पंथोंके जोर से जैनधर्म के अनुयायियों में बहुत बड़ा आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था, अशान्ति फैल गई थी और दूसरी तरफ शिथिलाचारने साधुओं पर अपना अधिकार जमाना प्रारंभ किया था। इससे साधुओंमें स्वच्छंदताका वायु फैलने लगा, छोटे मोटेकी मर्यादा प्रायः उठने लगी, गृहस्थों के साथ साधु विशेष व्यवहार रखने लगे। उसका परिणाम 'अतिपरिचयादवज्ञा' के अनुसार, साधुओंको भोगना पड़ा। साधुओं में ममत्व बढ़ा। वे पुस्तकों और वस्त्रोंका और कई कई तो द्रव्य का भी संग्रह करने लगे। रसनेन्द्रियकी लुब्धताके कारण कई तो शुद्धाशुद्ध आहार का भी विचार छोड़ने लगे। पड़िलेहण और इसी तरह की अन्य जयणाओंमें भी वे उपेक्षा करने लगे। उनकी वचन वर्गणाओंमें भी कठोरताने प्रवेश किया। इन बातों से श्रावकों की साधुओं पर से श्रद्धा हटने लगी। राजकीय

झगड़ों और मतोंके टंटों से कई प्रान्तोंमें तो साधुओंका विहार भी बंद हो गया। साधुओंकी शिथिलता से नये निकले हुए मत बहुत लाभ उठाते थे। वे साधुओंकी शिथिलता और झगड़ों को दिखाकर लोगों को अपने अनुयायी बनाते थे। उन मत-प्रवर्तकों में से हम यहाँ पर 'लौंका' का उदाहरण देते हैं। उसने इस स्थिति का लाभ उठाकर अपने मतको बड़े जोरों के साथ आगे बढ़ाया। जिन देशोंमें शुद्ध साधु नहीं जा सकते थे उन देशोंमें उसने जाकर हजारों लोगों के दिलों को पलटा, उन्हें मूर्तिपूजा से हटाया और अपने मत का अनुयायी बनाया। इतना ही क्यों? सेकड़ों जगह तो-जहाँ एक भी मूर्तिपूजक नहीं रहा-उसने मंदिरों में कांटे लगवा दिये। यह साधुओं की शिथिलता और आपसी द्वैषही का परिणाम था।

यद्यपि साधुओं और श्रावकों की ऐसी भयंकर स्थिति हो गई थी, तथापि पवित्रता का सर्वथा लोप नहीं हुआ था। उस समयमें भी ऐसे ऐसे त्यागी और आत्मश्रेयमें लीन रहनेवाले साधु महात्मा मौजूद थे कि, जो वैसे जहरीले संयोगोंमें भी अपने साधुर्धर्मकी भली प्रकार से रक्षा कर सके थे। इतना ही क्यों, कई शासनप्रेमी ऐसे भी थे कि, जिनको वैसी भयंकर स्थिति देखकर दुःख होता था। तीव्र प्रवाह के सामने जाने का साहस करना सर्वथा असंभव नहीं तो भी भयानक जरूर है। मगर उस भयानक दशामें भी एक महात्मा क्रिया का उद्धार करने के लिए आगे आये थे। उनका नाम था 'आनंदविमलसूरि'। क्रियोद्धार करने में उन्होंने बहुत बड़ा पुरुषार्थ किया था। कहा जाता है कि, उन्हें इस महान धर्ममें यद्यपि जितने चाहिए उतने और जैसे चाहिए वैसे सहायक-साधन नहीं मिले थे, तथापि उन्होंने अपने ही पुरुषार्थ से उस समयकी स्थितिमें बहुत बड़ा परिवर्तन कर दीया था। वे समयानुसार साधुर्धर्म के समस्त नियमों को उचितरूप से पालते थे, किसी श्रावक या श्राविका के प्रति ममता नहीं रखते थे, सबको समान रूप से उपदेश देते थे, सबको समान दृष्टि से देखते थे, निःस्पृहताके

प्रकरण दूसरा।

सूरि-परिचय।

संसार में समय पर ऐसे महात्मा पुरुष उत्पन्न होते हैं कि जो 'स्वोपकार' को अपने जीवन का लक्ष्यबिंदु नहीं बनाते हैं, बल्कि 'परोपकार' ही में अपने जीवन की सार्थकता समझते हैं। ऋषियोंको इसका पूर्ण अनुभव हुआ था, इसीलिए उन्होंने यह कहा है कि,— "परोपकाराय सतां विभूतयः।" सज्जनोकी-महात्माओंकी समस्त विभूति परोपकार ही के लिए होती है। इस प्रकरण में हम जिनका परिचय कराना चाहते हैं वे भी उक्त प्रकार के परोपकारी महात्माओं में से एक थे।

विक्रम संवत् १५८३ (ई.स. १५२७) के मार्गशीर्ष शुक्ला ९ सोमवार के दिन 'पालनपुर' के ओसवाल गृहस्थ कूंराशाह की धर्मपत्नी नाथीबाईने एक पुत्रको जन्म दिया। उसका नाम 'हीरजी' रखा गया। हीरजीके पहिले नाथीबाईके तीन पुत्र और तीन कन्याएँ हो चुकी थीं। पुत्रोंके नाम थे संघजी, सूरजी और श्रीपाल व पुत्रियों के नाम थे—रंभा, राणी और विमला। 'होनहार विरवान के होत चीकने पात' इस नियमानुसार हीरजी बचपनही से तेजस्वी, सुलक्षणयुक्त और आनंदी स्वभाववाले थे। इससे उनके कुटुंबियोंही के नहीं बल्कि हरेक के—जो उन्हें देखता था—उसीके-हृदयमें उनसे प्रेम करने की कुदरती प्रेरणा होती थी।

पहिले यह नियम था कि, गृहस्थ लोग अपनी संतान को व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कराने के लिए जैसे पाठशालाओं में भेजते थे,

वैसे ही धार्मिक ज्ञान प्राप्त कराने, अन्तःकरणमें धार्मिक संस्कार जमाने और धार्मिक क्रियाओं से परिचित कराने के लिए धर्मगुरुओं के पास भी नियमित रूपसे भेजा करते थे। वर्तमान के गृहस्थोंकी भाँति वे इस बात का भय नहीं रखते थे कि, साधुओंके पास भेजनेसे कहीं हमारी सन्तान साधु न हो जाय। साधु होने में अथवा अपने पुत्रको यदि वह साधु बनना चाहता तो उसे साधु बनाने में पहिले के लोग अपना और अपने कुल का गौरव समझते थे। इतना जरूर था कि, जो साधु बनने की इच्छा रखता था, उसको वे लोग पहिले यह समझा देते थे कि, साधुधर्ममें कितनी कठिनता है। मगर ऐसा कभी नहीं होता था कि, अपनी संतानको साधु बनने से रोकने के लिए वे लडाई-झगड़ा करते या कोटीं में जाते। इतना ही क्यों, कई तो ऐसे भवभीरु और निकष्टभवी भी होते थे जो अपनी सन्तानको, बचपनही से साधु के समर्पण करने में अपना सौभाग्य समझते थे। यदि ऐसा नहीं होता तो हेमचंद्राचार्य ५ वर्षकी आयुमें, आनंदविमलसूरि ५ वर्ष की उम्र में, विजयसेनसूरि ९ वर्षकी आयुमें, विजयदेवसूरि ९ वर्षकी आयुमें, विजयानंदसूरि ९ वर्षकी आयुमें, विजयप्रभसूरि ९ वर्षकी आयुमें, विजयदानसूरि ९ वर्षकी आयुमें, मुनिसुंदरसूरि ७ वर्षकी आयुमें और सोमसुंदरसूरि ७ वर्षकी आयुमें-ऐसे छोटी छोटी उम्र में कैसे दीक्षा ले सकते थे ?

इससे किसीको यह नहीं समझना चाहिए कि, जो कमाने योग्य नहीं होते थे वे साधु हो जाते थे। अथवा उनके संरक्षक उन्हें साधु बना देते थे। हमें उनके चरित्रों से यह बात भली प्रकार मालूम हो जाती है कि, वे लोग प्रायः उच्च और धनी कुटुंबकीही सन्तान थे। इससे यह स्पष्ट है कि,—“असमर्थो भवेत् साधुः” का सूत्र उनके किसी तरह से भी लागू नहीं पड़ सकता है। जो ‘दीक्षा’ को ऐहिक और पारलोकिक सुख का सर्वोत्कृष्ट साधन समझते हैं, जो ‘शुद्धचारित्र’ को ही जगत् पर प्रभाव डालने का एक चमत्कारिक जादू समझते हैं

वे कभी क्षणभंगुर लक्ष्मी के और अन्तमें भयंकर कष्ट पहुँचानेवाली विषयवासनाओं के फंदेमें नहीं फंसते हैं-उनमें मुाध नहीं होते हैं। वे तो प्रतिक्षण यही सोचा करते हैं कि—“हम साधु होकर अपना और जगत् का कल्याण करेंगे।”

ऐसी शुभ भावनाएँ रखकर अच्छे खानदान के युवक उस समय दीक्षा लेते थे। उसीका यह परिणाम था कि, ‘स्वोपकार’ के साथ ही अपनी पुर्णशक्ति के साथ वे परोपकार के सिद्धान्त को भी पालते थे। वे इतने महान हो गये इसका वास्तविक कारण हमें तो उनका बचपन में ही दीक्षित होकर उच्च धार्मिक क्रियाओं को व्यवहार में लाना मालूम होता है।

इस समय दीक्षा की बात तो दूर रही, धार्मिक संस्कारों का ही अभाव हो रहा है। अच्छे अच्छे व्यवहारज्ञ युवक भी धर्म का तो कक्षा भी कठिनता से जानते हैं। इसका खास कारण यह है कि, वे बचपन से ही गुरुओं-साधुओं की संगति से दूर रहे हैं। यदि प्राचीन प्रथा के अनुसार वे बचपन से ही अमुक समय तक के लिए नियमित रूप से साधुओं की संगति में रहते और व्यावहारिक ज्ञान के साथ ही धार्मिक ज्ञान भी प्राप्त करते तो उनकी धर्म-भावनाएँ दृढ़ होतीं और आज ‘नास्तिकता’ का जो दोष उनके सिर रखवा जाता है सो न रखवा जाता। अस्तु।

ऊपर लिखित रीति के अनुसार हीरजीको उनके पिता कूंराशाहने जैसे व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए पाठशालामें भेजा था, वैसे ही धार्मिक ज्ञान प्राप्त करने के लिये साधुओं के पास भेजनेमें भी आगापीछा नहीं किया था। परिणाम यह हुआ कि, वे बारह वर्ष की आयु में ही बहुत होशियार और धर्मपरायण बन गये। उनको देख देखकर लोगों को आश्र्य होता था।

उनके बचपन के व्यवहारों, और संसार से उदासीनता दिखानेवाले, भवभीरुतादर्शक मधुर वचनों ने उनके कुटुंबियोंको, विश्वास दिला दिया था कि—‘वे किसी दिन साधु होंगे।’ एकबार उन्होंने बातें ही बातों में अपने पिता से कहा—“यदि कोई व्यक्ति अपने कुटुंबमें से साधु हो जाय तो अपना कुटुंब कैसा गौरवान्वित हो?” कुटुंबी लोगों की उक्त प्रकार के मन्तव्य को इस कथन ने और भी ढढ बना दिया।

भावी प्रबल। थोड़े ही दिनों में हीरजीके माता पिताका देहान्त हो गया। इस घटनाने हीरजीके संसारविमुख हृदय को और भी स्पष्टताके साथ संसारकी अनित्यता समझा दी—उनके हृदय को और भी विशेषरूप से वैरागी बना दिया। माता पिताका स्वर्गवास सुनकर हीरजीकी दो बड़ी बहिनें विमला और राणी जो पाटन ब्याही गई थीं—आई और हीरजी को पालनपुरसे अपने साथ ले गईं।

उस समय पाटनमें श्रीविजयदानसूरि विराजते थे। ये क्रियोद्वारक आनन्दविमलसूरिके—जिनका पहिले प्रकरणमें उल्लेख है—शिष्य थे। हीरजी नित्यप्रति उनको बंदना करने के लिए जाने लगे। विजयदान-सूरिकी धर्मदेशना धीरे धीरे हीरजीके कोमल हृदय पर प्रभाव डालने लगी। हीरजीके हृदयमें दीक्षा लेने की भावना ढढ हुई। अपनी यह भावना उन्होंने अपनी बहिनोंको भी सुनाई।

बहिनें बुद्धिमान और धर्मपरायणा थीं। वे भली प्रकार से समझती थीं कि—दीक्षा मनुष्य के कल्याणमार्ग की अन्तिम सीमा है॥ इससे उन्होंने यद्यपि भाई की भावना का विरोध न किया तथापि, मोहवश स्पष्ट शब्दोंमें, दीक्षा लेने की अनुमति भी नहीं दी। इस समय उनका मन ‘व्याघ्रतटी’ न्याय के समान हो रहा था। अतः उन्होंने मौन धारण की। उनके इस मौन से हीरजीको पहले कुछ नहीं सूझा; परन्तु अन्तमें उन्होंने सोचा कि,—‘अनिषिद्धिमनुमतम्’ इस न्याय के अनुसार मुझे

आज्ञा मिल चुकी है। अन्तमें उन्होंने संवत् १५९६ (ई. सन् १५४०) के कार्तिक सुद-२ सोमवार के दिन पाटनमें ही श्री विजयदानसूरिके पास से ‘दीक्षा’ ले ली। उस समय उनका दीक्षा नाम ‘हीरहर्ष’ रखा गया। हीरजी के साथ ही अन्य अमीपाल, अमरसिंह (अमीपाल के पिता) कपूरा (अमीपाल की बहन) अमीपालकी माता, धर्मशीत्रघ्नि, रुडोत्रघ्नि, विजयहर्ष और कनकश्री इन आठ मनुष्योंने भी दीक्षा ली थी। अबसे हम हीरजी को मुनि हीरहर्ष के नाम से पहचानेंगे।

वर्तमान समयमें जैसे-नवद्वीप (बंगाल) न्यायका और ‘काशी’ ‘व्याकरण’ का केन्द्र प्रसिद्ध है वैसे ही उस समय न्यायका केन्द्रस्थान दक्षिण समझा जाता था। यानी दक्षिण देश में न्यायशास्त्र के अद्वितीय विद्वान् रहते थे। जैसे हीरहर्षमुनि की बुद्धि तीक्ष्ण थी, वैसे ही उनकी विद्या प्राप्त करने की इच्छा भी प्रबल थी। इससे विजयदानसूरिने उन्हें न्यायशास्त्रका अध्ययन करने के लिए दक्षिणमें जाने की अनुमति दी। वे श्रीधर्मसागरजी और श्रीराजविमल इन दोनों को साथ लेकर दक्षिण के सुप्रसिद्ध नगर देवगिरि^१ गये थे। वहाँ बहुत दिन तक रह कर उन्होंने न्यायशास्त्र के कठिन कठिन ग्रंथ जैसे ‘चिन्तामणि’ आदि का अध्ययन किया था। उस समय निजामशाह देवगिरि का राज्यकर्ता था। उक्त तीनों मुनियों के लिए जो कुछ व्यय होता था, वह वहीं के इस देवसीशाह और उनकी स्त्री जसमाबाई देते थे।

१. वर्तमानमें देवगिरिको दौलताबाद कहते हैं। एक समय यहाँ यादव राज्य करते थे। ई. सन् १३३९ में इसका नाम दौलताबाद पड़ा था। यह नगर दक्षिण हैदराबाद के राज्यमें औरंगाबाद से १० माइल पश्चिमोत्तरमें है। ई. स. १९९४ में अलाउद्दीन खिलजीने इस नगरके अभेद्य दुर्ग को तोड़ा था। यहाँ के अधिपति का नाम निजामशाह था। उसका पूरा नाम था बुराननिजाम शाह। इस शाहने ई. स. १५०८ से १५५३ तक दौलताबाद में हुक्मत की थी। हीरविजयसूरि इसकी हुक्मतमें ही देवगिरि गये थे।

अभ्यास करके आने के बाद विजयदानसूरिने, हीरहर्षमें जब असाधारण योग्यता देखी तब उनको नाडलाई (मारवाड) में सं. १६०७ (ई.स. १५५१) में पंडितपद और संवत् १६०८ (ई.स. १५५२) के माघ सुदी ५ के दिन बड़ी धूमधामके साथ नाडलाई के श्रीनेमिनाथ भगवान् के मंदिरमें 'उपाध्याय' पद दिया। उनके साथ ही धर्मसागरजी और राजविमलजीको भी उपाध्याय पद मिले थे। तत्पश्चात् संवत् १६१० (ई.स. १५५४) के पोस सुदी ५ के दिन सीरोही (मारवाड)में आचार्य श्रीविजयदानसूरिने उन्हें 'सूरिपद' (आचार्यपद) दिया।

यह कहना आवश्यक है कि, जिस एक महान् व्यक्तिके अवतरण की आशा का उल्लेख प्रथम प्रकरणमें किया गया था वह महान् व्यक्ति ये ही सूरीश्वर हैं। उनको हम अब हीरविजयसूरिके नाम से पहचानेंगे। इस पुस्तक के दो नायको में से प्रथम (सूरीश्वर) नायक ये ही हैं।

आचार्य होने के बाद जब वे पाटन गये थे तब वहाँ उनका 'पाटमहोत्सव' हुआ था। पाट-महोत्सव के समय वहाँ के सूबेदार शेरखाँ^१ के मंत्री भणसाली समरथ ने अतुल धन खर्चा था। पाट-महोत्सव के समय एक खास जानने योग्य क्रिया होती है। वह यह है कि, जब आचार्य नवीन पाटधरको पाट पर बिठाते हैं तब स्वयं आचार्य पहिले पाटधरको विधिपूर्वक वंदना करते हैं, फिर संघ वंदना करता है। ऐसा करने में एक खास महत्व है। पाट पर स्थापन करनेवाले आचार्य स्वयं वंदना करके यह बात बता देते हैं कि, नवीन गच्छपतिको-पाटधरको मैं मानता हूँ। तुम सब (संघ)भी उन्हें मानना। आचार्य के ऐसा करने से पाट पर बैठनेवाले साधु को, जो साधु उनसे दीक्षामें बड़े होते हैं उनके मनमें, वंदना करनेमें यदि संकोच होता है तो वह भी मिट जाता है।

१. यह शेरखाँ दूसरे अहमदशाहके समयमें पाटनका सूबेदार था। जो इसके विषयमें विशेष जानता चाहते हैं वे मीराते-सिकंदरी देखें।

इससे किसीको यह नहीं समझना चाहिए कि-नवीन पाटधर को आचार्य हमेशा ही वंदना करते रहते हैं। वे केवल पाट पर बिठाते समय ही वंदना करते हैं। पश्चात् तो नियमानुकूल शिष्य ही आचार्य को वंदना करते हैं।

आचार्यपदवी को प्राप्त होने के बारह बरस बाद उनके गुरु श्री विजयदानसूरिका संवत् १६२२ (ई.स. १५६६)के वैशाख सुदी १२ के दिन बडावलीमें स्वर्गवास हुआ। इससे उन्हें भट्टारककी पदवी मिली। उन्होंने समस्त संघका भार अच्छी तरह उठा लिया। तत्पश्चात् वे देश भरमें विचरण करने लगे।

प्रथम प्रकरणमें हम यह बता चुके हैं कि, विक्रमकी सोलहवीं शताब्दिमें सारे भारतमें और खास करके गुजरात में अराजकता फैल रही थी। इसलिए जिलाधीश प्रजाको तंग करने में कोई कसर नहीं रखते थे। किसीके विरुद्ध कोई जाकर यदि शिकायत करता तो उसी समय उसके नाम वारंट जारी कर दिया जाता। यह नहीं दर्याप्ति किया जाता कि, जिसके नाम वारंट जारी किया गया है वह अपराधी है या नहीं, वह साधु है या गृहस्थ। वे तो बस दंड देने को ही अपनी हुक्मतके दबदबेका चिह्न समझते थे। इससे अच्छे २ निःस्पृही और शान्त साधुओंके ऊपर भी आपत्तियाँ आ पड़ती थीं और उनसे निकलना उनके लिए बहुत ही कठिन हो जाता था। इस अराजकता या सूबेदारों की नादिरशाही का अन्त सोलहवीं शताब्दि में ही नहीं हो गया था। उसका प्रभाव सत्रहवीं शताब्दिमें भी बराबर जारी रहा था।

अपने ग्रंथ के प्रथम नायक हीरविजयसूरि को भी-जब वे आचार्य पद प्राप्त करने के बाद गुजरात प्रान्तमें विचरण करते थे-उस समयके सूबेदारोंकी नादिरशाही के कारण कष्ट उठाने पड़े थे। सामान्य कष्ट नहीं, महान् कष्ट उठाने पड़े थे। यह कथन अत्युक्ति पूर्ण नहीं

है। उन्होंने जो कष्ट सहे थे उनमें से दो चार का यहाँ उल्लेख कर देना हम उचित समझते हैं।

एकबार हीरविजयसूरि विचरण करते हुए खंभात पहुँचे। वहाँ रलपाल दोशी नामका एक धनिक रहता था। उसकी स्त्री का नाम ठकाँ था। उसे एक लडका भी था। उसकी आयु तीन ही बरस की थी। उसका नाम था रामजी। वह हमेशा रोगी रहता था। एकबार रलपालने सूरिजीको वंदना करके कहा—“महाराज! यदि यह छोकरा अच्छा हो जायगा और उसकी मरजी होगी तो मैं उसे आपकी चरण सेवा करने के लिए भेट कर दुँगा।”

थोडे दिन बाद आचार्यश्री वहाँ से विहार करके अन्यत्र चले गये। लडका दिन बदिन अच्छा होने लगा। कुछ दिनमें तो वह सर्वथा अच्छा हो गया। जब छोकरा आठ बरस का हुआ तब सूरिजी विहार करते हुए पुनः खंभात गये। उन्होंने लडका माँगा। इससे रलपाल और उसका परिवार आचार्य महाराज से नाराज होकर झगड़ा करने लगे। सूरिजीने मौन धारण किया, और फिर से उसका जिक्र नहीं किया।

रामजी को अजा नामकी एक बहिन थी। उसके ससुरेका नाम हरदास था। हरदास ने अपनी पतोहूकी प्रेरणासे उस समय के खंभात के हाकिम शितावखाँ^१ के पास जाकर कहा:—“आठ वर्ष के बालक को हीरविजयसूरि साधु बना देना चाहता है, इसलिए उसे रोकना चाहिए।” कानके कच्चे सूबेदारने तत्काल ही हीरविजयसूरि और

१. शितावखाँ का असली नाम सैयद हसहाक है। शितावखाँ यह उसका उपनाम या पदवी है। इसके संबंधमें जिनको विशेष जानने की इच्छा हो वह ‘अकबरनामा’ प्रथम भाग अंग्रेजी अनुवादका—जो जारी किया हुआ है। (पृ. ३१९ वाँ देखें।)

उनके साथ के साधुओंको पकड़ने के लिए वारंट जारी कर दिया। इस खबरको सुनकर सूरिजी को एक एकान्त स्थानमें छिप जाना पड़ा। हीरविजयसूरि तो नहीं मिले मगर रलपाल और रामजी शितावखाँ के पास पहुँचाये गये। छोकरेका रूप देखकर शितावखाँ ने रलपाल से कहा—“क्यों बे! तू इसको साधु किस लिए बनाता है? यह बच्चा फकीरी क्या समझे? याद रख, अगर तू इसको साधु बनायेगा तो मैं तुझको जिंदा नहीं छोड़ूँगा।”

शितावखाँ के कोपयुक्त वचन सुनकर रलपाल घबरा गया और बोला—“मैं न तो इसे साधु बनाना चाहता हूँ और न आगे बनाऊँगा मैं तो इसका शीघ्र ही व्याह करनेवाला हूँ। आपको किसीने यह झूठ कहा है?”

रलपालकी बात सुनकर शितावखाँने उसे छोड़ दिया। सब तरह शान्ति हो गई। इस झगड़ेमें हीरविजयसूरिको तेर्इस दिन तक गुप्त रहना पड़ा था।

दूसरा उपद्रव-विक्रम संवत् १६३० (ई.स. १५७४) में हीरविजयसूरि जब ‘बोरसद’ में थे, तब कर्णऋषिके शिष्य जगमालऋषि ने आकर उनसे फर्याद की कि, “मेरे गुरु मुझे पुस्तके नहीं देते हैं सो दिलाओ।”

सूरिजीने उत्तर दिया:—“तेरे गुरु तुझे अयोग्य समझते होंगे इसी लिए वे तुझे पुस्तकें नहीं देते। इसके लिए तू झगड़ा क्यों करता है?”

आचार्यश्रीने उसे समझाया तो भी वह न माना। इसलिए वह गच्छ के बाहिर निकाल दिया गया। जगमाल अपने शिष्य लहुआऋषि को साथ लेकर ‘पेटलाद’ गया, वहाँ के हाकिम से मिला और हीरविजयसूरिके विषयमें कई बनावटी बाते कहीं। हाकिमने नाराज होकर उसी समय हीरविजयसूरिको पकड़ने के लिए कई पुलिस के सिपाही

उसके साथ भेजे। सिपाहियों को लेकर वह बोरसद गया, मगर वहाँ उसका काम न बना। यानी-हीरविजयसूरि या अन्य कोई साधु वहाँ न मिले। वह लौटकर 'पेटलाद' गया और कुछ घुडसवार लेकर पुनः बोरसद गया। इसबार भी हीरविजयसूरि न मिले। श्रावकोंने सोचा कि-इस तरह बार बार उपद्रवोंका होना, और आचार्य महाराजको हैरान करना उचित नहीं है। साम, दाम, दंड, भेद से इस उपद्रवको शान्त करना ही उचित है। ऐसा सोचकर उन्होंने 'दामनीति'का उपयोग किया। घुडसवारों की मुट्ठी गरम होते ही वे जगमालके विरुद्ध हो गये और उसे कहने लगे:—

"तू शिष्य है और वे तेरे गुरु हैं। गुरुके साथ झगड़ा करन उचित नहीं है। गुरुको अधिकार है कि, वे चाहें तो तुझे बाजारमें खड़ा करके बेच दें और चाहें तो तेरे नाकमें नाथ डाले। तुजे सबकुछ सहना होगा।"

जो उसके सहायक थे वे ही जब इस तरह विरोधी हो गये तब बेचारा वह क्या करता। उसकी एक न चली। अन्तमें उन्होंने उसको वहाँ से निकाल दिया। इस तरह उस उपद्रवका अन्त हुआ। हीरविजयसूरि पुनः प्रकट रूपसे विचरण करने लगे। विहार करते हुए वे खंभात आये।

तीसरा उत्पात—श्रीसोमविजयजीने दीक्षा ली उसके बाद हीरविजयसूरि विहार करते हुए, 'पाटन' होकर 'कुणगेर' गये। (यह कुणगेर पाटनसे ३ कोस दूर है।) चौमासा वहीं किया। सोमसुंदर नामक एक आचार्य भी उस समय वहाँ थे। पर्युषण पर्व बीतने के बाद, उदयप्रभ नामके आचार्य वहाँ और गये। (उदयप्रभसूरि उस समयके शिथिल साधुओं (यतियों)में से कोई एक होने चाहिए। कारण-यदि वे शिथिलाचारी न होते तो, निष्प्रयोजन एक गाँव से दूसरे गाँव चौमासे

मे न जाते। कहा जाता है कि, उस समय उनके साथ तीनसौ महात्मा थे। अस्तु।) उदयप्रभसूरिने हीरविजयसूरिको कहलाया कि—तुम सोमसुंदरसूरिको "खामणा करो-क्षमापना माँगो।" सूरिजीने कहलायाः— "जब मेरे गुरुजीने नहीं किये तो मैं कैसे कर सकता हूँ?"

इस तरह हीरविजयसूरिने जब उदयप्रभसूरिकी बात न मानी तब वे और उनके साथी सब सूरिजीसे ईर्ष्या करने लगे। उन्होंने सूरिजीको कष्ट देना स्थिर किया। वे पाटण गये। वहाँ के सूबेदार कलाखाँसे मिले, और उसे समझाया कि,—'हीरविजयसूरिने बारिश रोक रख्खी है।' क्या बुद्धिवाद के कालमें कोई मनुष्य इस बातको मान सकता है? मगर पाटनके हाकिम कलाखाँने तो उस बातको ठीक समझा और हीरविजयसूरिको पकड़ने के लिए सौ घुडसवार भेज दिये। सवारोंने जाकर 'कुणगेर' को घेर लिया। हीरविजयसूरि रातको वहाँ से निकल गये। उनकी रक्षाके लिए 'वडावली' के रहनेवाले तोला श्रावकने कई कोलियोंको उनके साथ भेज दिया। हीरविजयसूरि 'वडावली' पहुँचे। जब वे वडावली जानेको निकले थे तब खाईमें उतर कर जाते समय उनके साथके साधु लाभविजयजी को सर्पने काट खाया। मगर सूरिजी के हाथ फेरने से सर्पका जहर न चढ़ा।

उस तरफ कुणगेर में गये हुए घुडसवारोंने हीरविजयसूरिको ढूँढ़ा। मगर वे नहीं मिले। इससे पैरोंके निशानों के सहरे वे वडावली पहुँचे। वडावलीमें भी उन्होंने बहुत खोज की मगर सूरिजी उन्हें नहीं मिले। इससे अन्तमें निराश होकर वे वापिस पाटन चले गये। इस आपत्तिसे बचनेके लिए उन्हें एक भोंयरे में रहना पड़ा था। इस तरह उन्हें तीन महीने तक गुप्त रहना पड़ा था।^१ वि. सं. १६३४ (ई.स. १५७८)

१. यह उपद्रव वि.सं. १६३४ में हुआ था। यह बात कवि ऋषभदास कहते हैं। मगर यदि यह उपद्रव पाटनके सूबेदार कलाखाँके (जिसका पूरा नाम खानेकलाँ मीर महम्मद था) वक्तमें हुआ हो तो उपर्युक्त संवत् लिखने में भूल हुई है। कारण-

वि. सं. १६३६ में भी ऐसा ही एक उपद्रव हुआ था। जब हीरविजयसूरि अहमदाबाद गये तब वहाँ के हाकिम 'शहावखाँ' के पास जाकर किसीने उनके विरुद्ध शिकायत की कि—“हीरविजयसूरि ने बारिश रोक रखी है।” शहावखाँने यह बात सुनते ही हीरविजयसूरिको बुलाया और कहा:—“महाराज! आजकल बारिश क्यों नहीं बरसती है? क्या आपने बाँध रखी है?”

सूरिजीने उत्तर दिया:—“हम वर्षाको क्यों बाँध रखते! वर्षाके अभाव लोगोंको दुःख हो, उनके हृदय अशान्त रहे और जब लोग ही अशान्त रहे तो फिर हमें शान्ति कैसे मिले?”

इस तरह दोनों में वार्तालाप हो रहा था उसी समय अहमदाबादके प्रसिद्ध जैन गृहस्थ श्रीयुत कुँवरजी वहाँ जा पहुँचे। उन्होंने शहावखाँ को जैन साधुओं के पवित्र आचार और उत्कृष्ट, उदार विचार समझाये। सुनकर शहावखाँ खुश हुआ। उसने सूरिजी को उपाश्रय जानेकी इजाजत दी। सरिजी उपाश्रय पहुँचे। श्रावकोंने बहुत सा दान दिया। जब दान दिया जा रहा था उस समय एक टूकड़ी आया। उसके साथ कुँवरजी जौहरी का झगड़ा हो गया। ‘सूरिजीको किसने छुड़ाया?’ इस विषय में बात होते होते दोनों तू ताँ पर आ गये। झगड़ा बहुत बढ़ गया। अन्त में टूकड़ी यह कह कर चला गया कि-देखें अबकी बार तू कैसे अपने गुरुको छुड़ा लाता है। वह कोतवालके पास गया।

कलाखाँ तो संवत् १६३१ (सन् १५७५) तक ही पाटन का सूबेदार रहा था। पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई थी। इससे यह समझ में आता है कि, या तो संवत् लिखने में भूल हुई है या सूबेदार का नाम लिखने में भूल हुई है।

१. शितावखाँका पूरा नाम शहाबुद्दीन अहमदखाँ था। इसमें विषयमें विशेष बातें जानना चाहते हैं वे 'आइन-इ-अकबरी' के अंग्रेजी अनुवाद जो ब्लॉकमैनने किया है-पहिला भागका ३३२ वाँ पृष्ठ देखें।

सूरिजीको पुनः फँसाने के उद्देश्य से उसने सूरिजी के विरुद्ध कोतवाल को बहुत कुछ कहा। कोतवालने खान से कहा। खान ने सूरिजीको पकड़लाने के लिए सिपाहियोंको हुक्म दिया। जौहरीबाड़े में आकर सिपाहियोंने सूरिजीको पकड़ा। जब वे सूरिजीको पकड़ कर ले जाने लगे तब राघव नामका गंधर्व और श्रीसोमसागर बीचमें पड़े। अन्तमें उन्होंने सूरिजीको छुड़ाया। इस खैंचाखैंचीमें गंधर्व राघवके हाथमें चोट भी लग गई। सूरिजी नंगे शरीर ही वहाँ से भागे। इस आफतसे भागते हुए देवजी नामके लौंकाने उन्हे आश्रय दिया था। और वे उसीके यहाँ रहे थे।

उधर पकड़नेवाले नौकर चिल्हाते हुए कचहरीमें गये और कहने लगे कि—“हमको मुक्कों ही मुक्कों से मारा और हीरजी भग गया। वह तो कचहरी को भी नहीं मानता है।” यह सुनकर खान विशेष कुपित हुआ। उसने सूरिजीको पकड़ने के लिए बहुत से सिपाही दौड़ाये। चारों तरफ हा हुल्लड मच गया। घरोंके दर्वाजे बंद हो गये। खोजतेखोजते, सूरिजी तो न मिले मगर धर्मसागरजी और श्रुतसागरजी नामके दो साधु उनके हाथ आ गये। सिपाहियोंने पहिले उन दोनोंको खूब पीटा और फिर उन्हें हीरविजयसूरि न समझ छोड़ दिया। कोतवाल और सिपाही लोग सूरिजीके न मिलने से बापिस निराश होकर लौट गये। उनको पकड़ने की गडबड बहुत दिनों तक रही थी। उस गडबड के मिट जानेके बाद ही हीरविजयसूरि शान्ति के साथ विहार करने लगे थे।

उपर्युक्त उपद्रवों से हम सहज ही में समझ सकते हैं कि, उस समय के अधिकारी कहाँ तक न्याय और कानून का पालन करते थे। जिन बातोंको एक सामान्य बुद्धि का मनुष्य भी न माने उन बातोंको भी सत्य मानकर एक महान् धर्मगुरुको पकड़ने के लिए शिकारी कुत्तों की तरह पुलिस और घुडसवारों को चारों दिशाओंमें दौड़ा देना, उस

समय की अराजकता या दूसरे शब्दोंमें कहे तो उस समयके हाकिमों की नादिरशाही के सिवा और क्या था? जिस तिस तरह से प्रजा को बरबाद करने के सिवा और क्या था? अस्तु।

ऊपर जिन उपद्रवों का वर्णन किया गया है उनमें का अन्तिम सं. १६३६ में हुआ था। यह हम ऊपर भी कह चुके हैं। उसके बाद से शान्ति के साथ विहार करने लगे थे। सं. १६३७ में सूरिजी 'बोरसद' पधारे थे। वहाँ उनके पधारने से बहुत से उत्सव हुए थे। उस वर्ष उन्होंने खंभात में ही चौमासा किया था। वहाँ के संघवी उदयकरणने सं. १६३८ (ई.स. १५८२) के महा सुदी १३ के दिन सूरिजीसे श्रीचंद्रप्रभु की प्रतिष्ठा भी कराई थी। उसने आबू चितोड़आदि की यात्रा के लिए संघ भी निकाला था। तत्पश्चात् सूरिजी विहार करके गंधार पधारे।

ग्रंथ के प्रथम नायक श्रीहिरविजयसूरिके अवशेष वृत्तान्तको आगे के लिए छोड़कर अब हम ग्रंथ के दूसरे नायक सम्राट् के विषय में लिखेंगे।

प्रकरण तीसरा।

सम्राट्-परिचय।

प्रथम प्रकरण में भारतीय प्रजा पर जुल्म करनेवाले कई विदेशी राजाओं का नामोल्लेख हुआ है। उनमें पाठक बाबर और उसके पुत्र हुमायूँके नाम भी पढ़ चुके हैं। बाबर का संबंध हिन्दुस्तान के साथ ई.स. १५०४ में हुआ था। उस समय उसकी आयु बाईस बरस की थी, उस समय वह काबुल का अमीर हो गया था। यहाँ इस बात का पाठकों को स्मरण करा देना आवश्यक है कि, यह बाबर उसी तैमूरलंगका वंशज था जिसने भारत में आकर लाखों भारतवासियोंको कत्ल किया था और जिसने सतियों का सतीत्व नष्ट करने में कुछ भी कमी नहीं की थी। प्रथम प्रकरणमें यह भी उल्लेख हो चुका है कि, बाबरके आने बाद भारतमें शान्ति नहीं हुई। इसी बाबरने पानीपत के मैदानमें ई.स. १५२६ के अप्रैल की २१वीं तारीख के दिन इब्राहीम लोदीको मारा था। तत्पश्चात् ई.स. १५२७ के मार्चकी १६वीं तारीख को चितोड़ के राणा संग्रामसिंह के लश्कर को 'कानवा' (भरतपुर) के मैदानमें परास्त किया था। बाबरके संबंधमें विशेष कुछ न लिखकर केवल इतना ही लिख देना काफी है कि, संसारकी सतह से जैसे हजारों राजा अपयशकी गठियाँ बाँध कर विदा हो गये हैं वेसे ही बाबर भी सन् १५३० में ४८ वर्षकी आयुमें अपनी तूफानी जिन्दगी को पूरा कर विदा हो गया था।

उसके बाद उसका पुत्र हुमायूँ २२ वर्षकी उम्रमें दिल्लीकी गदी पर बैठा। बिचारी भारतीय प्रजाके दुर्भाग्यसे अब तक भारतमें शान्तिका

राज्य स्थापन करनेवाला एक भी राजा नहीं आया। यह सत्य है कि जो राजा राज्य-मदमें मत्त होकर प्रजाके प्रति उनका जो धर्म होता है उसे भूल जाते हैं अथवा उस धर्मको समझते ही नहीं है वे प्रजाको सुख नहीं पहुँचा सकते हैं। हुमायुँ बाबरसे भी दो तिल ज्यादा था। वास्तविक बात तो यह थी कि, उसमें राजाके गुण ही नहीं थे। अफीम के व्यसनने उसको सर्वथा नष्ट कर दिया था। उसकी अयोग्यताके कारण ही शेरशाहने ई.स. १५३१ में उसको छौसा और कन्नौजकी लडाईमें हराया था और आप गद्वीका मालिक बन गया था।

इस तरह हुमायुँ जब पदभ्रष्ट हुआ तब वह पश्चिम की तरफ भाग गया। और अन्तमें भाईसे आश्रय मिलने की आशा से काबुलमें अपने भाई कामरानके पास गया। परन्तु वहाँ भी उसकी इच्छा पूर्ण न हुई। कामरानने उसकी सहायता नहीं की। इससे वह अपने मुट्ठी भर साथियोंको लेकर सिंध के सहरा में भटकने लगा। संसारमें किसके दिन हमेशा एकसे रहे हैं? सुखके बाद दुःख और दुःखके बाद सुख इस 'अरघट्टघटी' न्यायके चक्र से संसार का कौन सा मनुष्य बचा है? मनुष्य यदि बारिकी से इस नियम का अवलोकन करे तो संसारमें इतनी अनीति, इतना अन्याय, इतना अधर्म कभी भी न हो। ऐसी खराब हालतमें भी हुमायुँ एक तेरह चौदह बरसकी लड़की के मोहमें पड़ा था। यह वही लड़की थी कि, जो हुमायुँ के छोटे भाई हिंडालके शिक्षक शेखअली अकबर जामीकी पुत्री थी और जिसका नाम हमीदाबेगम या मरियममकानी था। वह लड़की यद्यपि किसी राजवंश की नहीं थी तथापि हुमायुँके साथ ब्याह करना उसे पसंद नहीं था। कारण—हुमायुँ उस समय राजा नहीं था। इस घटनासे कौन आश्चर्यान्वित नहीं होगा कि, यद्यपि हुमायुँ राज्यभ्रष्ट हो गया था, जहाँ तहाँ भटकता फिरता था, कहीं उसे आश्रय नहीं मिलता था, और निस्तेज हो रहा था, तो भी एक तेरह चौदह बरसकी लड़की पर मुराद होकर उससे

ब्याह करने के लिए आतुर बन रहा था! आश्र्वय! आश्र्वय किस लिए? मोहराजा की मायामयी जाल से आज तक कौन बचा है? कई महीनों के प्रयत्न के बाद अन्तमें उसकी इच्छा फली। लड़की ब्याह करने को राजी हुई। ई.स. १५४१ के अन्तमें और १५४२ के प्रारंभ में पश्चिम सिंधके पाटनगरमें उनका ब्याह हो गया। उस समय लड़की की उम्र १४ बरस की थी। इस शादी से हुमायुँ का छोटा भाई हिंडाल भी उससे नाराज होकर अलग हो गया। हुमायुँके पास उस समय कुछ भी नहीं रहा था। न उसके पास हुक्मत थी, न उसके पास सेना थी और न कोई उसका सहायक ही था। उसके लघु भ्राता हिंडालके साथ बचाबचाया जो कुछ स्नेह था वह भी हमीदाबेगम के साथ ब्याह करने के नष्ट हो गया। वह निराश्रय और निरावलंब होकर जहाँ तहाँ भटकता हुआ अपनी स्त्री और कुछ मनुष्यों सहित हिन्दुस्थान और सिंध के बीच के मुख्य रस्ते पर सिंध के मरुस्थलके पूर्व तरफ 'अमरकोट' (उमरकोट) नामका एक कस्बा है उसमें गया। यह एक सामान्य कहावत है कि,—‘सभी सहायक सबल के, एक न अबल सहाय।’ परन्तु यह एकान्त नियम नहीं है। यदि यह एकान्त नियम होता तो संसारके दुःखी मनुष्योंके दुःख का कभी अन्त ही न होता। वहाँ पहुँचने पर हुमायुँको अपनी महान विपदा का अन्त होने के चिह्न दिखाई दिये। अमरकोटमें प्रवेश करते ही वहाँ के हिन्दुराजा राणाप्रसाद को हुमायुँ की हालत पर तरस आया। एक राजवंशी अतिथिकी दुर्दशा देखकर उसका अन्तःकरण दया से पसीज गया। उसने हुमायुँ को आश्रय दिया। इतना ही नहीं वह हुमायुँ को कष्टों से छुड़ाने के लिए यथासाध्य प्रयत्न भी करने लगा। क्या आर्य मनुष्योंका आर्यत्व कभी सर्वथा नष्ट हुआ है? ‘एक विदेशी मुसलमान राजवंशी पुरुष को किस लिए आश्रय दिया जाय?’ इस बात का कुछ भी विचार न करके अमरकोट के हिन्दुराजा ने हुमायुँ को आश्रय

दिया था। इतना ही नहीं यदि यह कहा जाय कि, हुमायूँ को प्राणदान दिया था तो भी अत्युक्ति नहीं होगी। राज्य-भ्रष्ट होने के बाद हुमायूँ को यहीं आकर सबसे पहिले शान्ति मिली थी। यहीं आकर अपने भाग्य की तेजस्वी किरणों के फिर से प्रकाशित होने की उसे आशा हुई थी। ई.स. १५४२ के अगस्त महीने से उसकी किस्मत का सितारा चमकने लगा था।

अमरकोट के राजाने हुमायूँ की अच्छी आवधगत की, उसको आश्वासन दिया और सलाह दी कि—मेरे दो हजार घुडसवार और मेरे मित्रों की ५००० सेना लेकर तुम ठड़ा और बक्खर प्रान्तों पर चढ़ाई करो। हुमायूँ ने यह सलाह मान ली। वह २० वीं नवम्बर को दो तीन हजार आदमी लेकर वहाँ से रवाना हुआ। उस समय उसकी लौही हमीदाबेगम सर्गभाँ थी, इसलिए वह उसको वहीं पर छोड़ गया।

कुछ दिन बाद अमरकोट में, हिन्दुराजा के घर हमीदाबेगम ने ई.स. १५४२ के नवम्बर की २३ वीं तारीख गुरुवार को एक पुत्र रलको जन्म दिया। उस समय हमीदाबेगम की आयु केवल पन्द्रह बरस की थी। पुत्रका नाम बदरुद्दीन महम्मद अकबर रखा गया। विद्वान् लोग कहते हैं—यह नाम इसलिए रखा गया था कि, हमीदाबेगम के पिता का नाम अलि अकबर था। भारतवर्ष जिस सप्राट की प्रतीक्षा कर रहा था और जिसका हम इस प्रकरणमें परिचय कराना चाहते हैं, वह सप्राट् यही बदरुद्दीन महम्मद अकबर है। यही 'सप्राट् अकबर' के नाम से संसारमें प्रसिद्ध हुआ है। हम भी इस सप्राट को 'सप्राट् अकबर' के नाम से ही पहिचानेंगे।

जिस समय अकबर का जन्म हुआ था उस समय उसका पिता हुमायूँ अमरकोट से २० माइल दूर एक तालाब के किनारे डेरा डाल कर ठहरा हुआ था। तरादीवेगखाँ नामके एक मनुष्यने उसे पुत्र जन्मकी बधाई दी। बधाई सुनकर हुमायूँ को अत्यंत आनंद हुआ।

व्यावहारिक नियम सबको—चाहे वह राजा हो या रंक, अपनी अपनी शक्तिके अनुसार पालने ही पड़ते हैं। पुत्र प्राप्तिकी प्रसन्नतामें हर तरह से उत्सव करना उस समय हुमायूँ अपना कर्तव्य समझता था। मगर कहावत है कि—'वसु विना नर पशु' उस पर भी हुमायूँ का जंगलमें निवास! वह क्या कर सकता था? उसके पास क्या था जिससे वह अपने मनोरथ को पूर्ण करता? पुत्र प्राप्ति के आनंददायक अवसर पर भी उपर्युक्त कारणों से उसके मुख कमल पर कुछ उदासीनता की रेखा फूट उठी। उसके अंगरक्षक जौहर नामक व्यक्तिने इस रेखा का कारण जाना। उसने तत्काल ही एक कस्तूरी का नाफ—जिसको उसने कई दिनों से संभालके रखा था—हुमायूँ के सामने ला रखा। हुमायूँ बड़ा प्रसन्न हुआ। एक मिट्टीके बर्तन में उसका चूरा किया और फिर वह चूरा सबको बाँटते हुए उसने कहा:—“मुझे खेद है कि, इस समय मेरे पास कुछ भी नहीं है इस लिए मैं पुत्र जन्म की खुशीके प्रसंगमें आप लोगों को, इस कस्तूरी की खुशबू के सिवा और कुछ भी भेट नहीं कर सकता हूँ। आशा है आप इसीसे सन्तुष्ट होंगे। मुझे यह भी उम्मीद है कि जिस भाँति कस्तूरी की सुगंध से यह मंडल सुवासित हुआ है वैसे ही मेरे पुत्र की यशरूपी सुगंध से यह पृथ्वी सुवासित मोअंतिर होगी।”

अकबर की जन्मतिथि के संबंधमें विद्वानों के दो मत हैं। कई कहते हैं कि, अकबर ई.स. १५४२ में १५ अक्टूबर रविवार को जन्मा था, मगर विन्सेट्. ए. स्मिथ कहता है कि—“यद्यपि अकबर ई.स. १५४२ में २३ नवम्बर गुरुवार को ही जन्मा था, तथापि पीछे से उसका जन्म दिन १५ अक्टूबर रविवार प्रकट किया गया था। इसी तरह उसका नाम भी बदल दिया गया था। यानी 'बदरुद्दीन महम्मद अकबर' के बजाय उसका नाम 'जलालुद्दीन महम्मद अकबर' प्रसिद्ध कर दिया गया था।” इसका प्रमाण वे यह देते हैं कि, जिस समय

अकबरका नाम रक्खा गया था उस समय हुमायूँ का विश्वस्त सेवक जौहर वहीं मौजुद था। उसने अपनी डायरीमें अकबर के जन्मकी तारीख, वार और पूरा नाम लिखा है। उससे हमारे कथन की पृष्ठ होती है। चाहे सो हो, प्रसिद्धिमें तो अकबर का पूरा नाम जलालुद्दीन महम्मद अकबर और उसकी जन्मतिथि १५ अक्टूबर रविवार सन् १५४२ ही आये हैं। अस्तु। बड़ोंकी बडाई में कुछ विचित्रता तो होनी ही चाहिए।

उपर्युक्त कथन से यह मालूम हो गया कि अकबर बाबर का पोता था। बाबर तैमूरलंग-जो तुर्क था-की पाँचवीं पीढ़ीमें था। इस तरह अकबर पितृपक्षमें तुर्क था और तैमूरलंग की सातवीं पीढ़ी में था।

अकबर पाँच बरस का हुआ तभी से हुमायूँ ने उसकी शिक्षा का प्रबंध किया था। प्रारंभ में अकबर को पढ़ने के लिए जो मास्टर रक्खा गया था उस मास्टरने अकबर को अक्षरज्ञान न करा कर कबूतरोंको पकड़ने और उड़ाने का ज्ञान दिया। एक एक करके अकबर को पढ़ने के लिए चार शिक्षक रखे गये, परन्तु अकबरने उनसे कुछ भी नहीं सीखा। कहा जाता है कि, अकबर ने और तो और अपना नाम लिखने वाँचने जितना भी लिखना पढ़ना नहीं सीखा था।

इस संबंधमें भी विद्वानों में दो मत हैं। कई कहते हैं कि, वह लिख पढ़ सकता था और कई कहते हैं कि—वह अक्षरज्ञान-शून्य था। चाहे उसे लिखना पढ़ना आता था या नहीं, मगर इतना जरूर है कि, वह महान विचक्षण था और पंडितों के साथ वार्ताविनोद करने में बड़ा ही कुशल था। सारे ही विद्वान् इस बात को स्वीकार करते हैं। भारतमें ऐसे पुरुष क्या नहीं हुए हैं कि, जो सर्वथा अक्षरज्ञान विहीन होने पर भी महापुरुष हुए हैं, उन्होंने छोटे बड़े राज्यतंत्र चलाये हैं। इतना ही

क्यों, वे बडे बडे वीरता के कार्य भी कर गये हैं। इसी तरह अकबरने भी अक्षर-ज्ञान-शून्य होकर भी यदि बडे बडे महत्व के कार्य किये हों तो इसमें आश्वर्य की कोई बात नहीं है। विद्वानों का मत है कि, यद्यपि अकबर स्वयमेव लिखना पढ़ना नहीं जानता था, तथापि ग्रंथ सुनने का उसे बहुत ही ज्यादा शौक था, इसलिए दूसरों से ग्रंथ बचवाकर आप सुना करता था। कई कविताएँ उसने कंठस्थ कर रक्खी थी। मुख्यतया हाफिज और जलालुद्दीन रूमी की कविताएँ उसे ज्यादा पसंद थीं। कहा जाता है कि—यही सबब था जिससे वह अपनी जिन्दगीमें धर्माध नहीं बना था।

बड़ोंको बडे ही कष्ट होते हैं और बड़ी ही चिन्ताएँ होती हैं। यह एक सामान्य नियम है। अकबरने जैसे अपनी पिछली जिन्दगी अमन चैन और ऐशो इशरतमें बिताई थी, वैसे ही उसे अपने प्रारंभिक जीवनमें बहुत ही ज्यादा कष्टोंका मुकाबिला करना पड़ा था उसे प्रारंभिक जीवनमें कष्ट हुए इसका वास्तविक कारण उसके पिता हुमायूँ के भाग्य की विषमता थी।

हुमायूँ को अमरकोट के राजाने महान विपत्ति के समय सहायता दी थी, परन्तु उसके साथ भी उसकी प्रीति बहुत दिनों तक नहीं टिकी। कारण—हुमायूँ के एक नौकरने अमरकोट के राजा का अपमान किया, परन्तु हुमायूँ ने उसका प्रतीकार नहीं किया। इससे अमरकोट का राजा कुछ हुआ। उसने हुमायूँ के पास से अपनी सेना वापिस ले ली। इससे हुमायूँ फिर से पहिले ही सा असहाय हो गया। वह अपनी स्त्री और पुत्र (अकबर) को लेकर कंधारकी तरफ रवाना हुआ। उस समय वहाँ का राजा उसका भाई कामरान था। उसने और उसके भाई अस्करीने हुमायूँ को पकड़ने का यत्न किया। हुमायूँ यह समाचार सुन, पुत्र अकबर को वहीं छोड़, अपनी स्त्रीको ले भाग गया। अकबर बचपन में ही माता पितासे भिन्न हुआ और शत्रु के हाथों चढ़ गया। अस्करीने

बालक अकबर को ले जा कर अपनी स्त्रीके हवाले किया और उसीके सिर उसके लालन-पालन का भार दिया।

हुमायूँ वहाँ से भागकर ईरानमें गया। वहाँ के राजाकी सख्ती से उसे शीआधर्म ग्रहण करना पड़ा। शीआधर्म ग्रहण करने से ईरान का बादशाह हुमायूँ से खुश हुआ। हुमायूँ ने उसकी खुशी का लाभ उठाया। कुछ द्रव्य और सेना की सहायता लेकर उसने कंधार और काबुल पर चढ़ाई की। इस लडाईमें पहिली बार हुमायूँ की जीत हुई। उसने कंधार और काबुल को जीतकर अपने प्यारे पुत्र को प्राप्त कर लिया; मगर दूसरीबार के युद्धमें वह हार गया। कामरान जीता। उसने कंधार के साथ ही काबुल और अकबर को उससे वापिस छीन लिया।

एकबार हुमायूँ काबुल के किले पर तोपके गोले छोड़ने की तैयारी कर रहा था, उस समय कामरान को किला बचाने का कोई उपाय नहीं सूझा। इसलिए उसने किले पर-जहाँ गोलेकी मार लगती थी-अकबर को ला खड़ा किया। हुमायूँ को तोप छोड़ना बंद रखना पड़ा। कारण-दूसरों को नष्ट करने जाते उसका प्यारा बेटा ही सबसे पहिले नष्ट हो जाता। इस लडाईमें आखिरकार हुमायूँ ही जीता। कामरान हार कर भारतमें भाग आया। हुमायूँ को फिर से अपना प्यारा पुत्र अकबर और काबुल देश मिले।

हुमायूँ भी कामरान से कम निटुर नहीं था। उसके भाईने जो कष्ट दिये थे उसका बदला लेने में उसने कोई कसर नहीं की थी। जब उसे फिर से दिल्ली का राज्य मिला, तब उसने कामरान को कैद किया, उसकी आँखे फोर्डीं, उनमें नींबू और नमक डाला। इस तरह दुःख दिया, तत्पश्चात् उसको मक्का भेज दिया। इसी भाँति उसने अस्करी को भी तीन साल तक कैदमें रखकर मक्का भेज दिया।

अफसोस! लोभाविष्ट मनुष्य क्या नहीं करता है? लाखों आदमी जिनकी आज्ञा मानते थे, जो बुद्धिमान समझे जाते थे वे भी जब ऐसी ऐसी क्रूरता और निर्दयता का व्यवहार करने लग जाते हैं तब यही कहना पड़ता है कि यह सब लोभ का ही प्रताप है।

ई. स. १५५१ में हुमायूँ का तीसरा भाई हिंडाल-जो गजनी का राज्य करता था-मर गया। हुमायूँ ने अकबर को वहाँ का हुक्मराँ बनाया। हिंडाल की लड़की हुकैयाबेगम के साथ अकबर का ब्याह हुआ। जिस समय अकबर गजनीमें हुकूमत करता था उस समय कई अच्छे अच्छे व्यक्ति उसकी संभाल रखते थे। कहा जाता है कि, अकबर केवल छः महीने तक ही गजनी में रहा था।

अकबर बचपन से ही महान तेजस्वी और बहादुर था। बड़ी से बड़ी तोपकी आवाज को भी वह सामान्य पटाखे की आवाज के समान समझता था। कुदरतने शूरता के और बहादुरी के जो गुण उसे बख्शे थे वे छिपे हुए नहीं रहे थे। जबसे वह थोड़ा होशियार हुआ तभी से वह युद्धमें जाने और पिताकी सहायता करने लगा था। यहाँ हम उसकी प्रारंभिक बहादुरी का एक उदाहरण देंगे।

एकबार हुमायूँ वहरामखाँ सहित पाँच हजार घुडसवारों को साथ लेकर काबुल से रवाना हुआ। जब वह पंजाबमें सरहिंद के जंगलोंमें पहुँचा तब सिकंदरसूर की सेना के साथ उसकी मुठभेड़ हो गई। हुमायूँ का सेनापति तो सिकंदर की सेना को देखते ही हताश हो गया। उसका मन यह विचार कर एकदम बैठ गया कि, इतनी जबरदस्त सेना के साथ युद्ध कैसे किया जायगा? उस समय हुमायूँ और उसके सेनापति का अकबर की बीरताने ही साहस बढ़ाया था। अकबरने ही उन्हें बहादुरी भरी बातें कह कर उत्तेजित किया था। इतना ही नहीं उसने खुद ही आगे बढ़कर सेनापति का काम करना

प्रारंभ किया था। परिणाम यह हुआ कि अकबर की सहायता और वीरता से हुमायूँ को उस लड़ाईमें फतेह मिली। पाठकों को यह जानकर आश्रय होगा कि, उस समय अकबर की आयु केवल बारह वर्सकी ही थी। तत्पश्चात् ई. स. १५५५ में हुमायूँने क्रमशः दिल्ली और आगरा की हुकूमत भी ले ली।

लाखों करोड़ों मनुष्योंको कत्ल कर, खूनकी नदियाँ बहाकर, या हलके से हलका नीचता पूर्ण कार्य करके जो राजा बने थे वे क्या कभी हमेशा राजा रहे हैं? विनाशी और शत्रुता पैदा करनेवाली जिस राज्यलक्ष्मी के लिए मनुष्य अन्याय करता है, अनीति करता है, लाखों मनुष्योंके अन्तःकरण दुखाता है वह लक्ष्मी क्या कभी किसीके पास हमेशा रही है? जो भावी की बड़ी बड़ी आशाओं के हवाई किले बना, महान अनर्थ कर राज्य प्राप्त करते हैं वे यदि अपने आयुकी विनश्वरताका और क्षणिकता का विचार करते हों तो क्या यह संभव है कि वे आध्यात्मिक संस्कारों को दूर कर संसारमें इतनी अनीति और अत्याचार करें? जिस पृथ्वी के लिए मनुष्य अपना सर्वस्व खो देते हैं वह पृथ्वी क्या कभी किसीके साथ गई है? गोंडलकी महारानी साहिबा 'श्रीमती नंदकोरबा' अपने 'गोमंडल परिक्रम' नामकी पुस्तकमें लिखते हैं—

"लोग पृथ्वीपति बनने के लिए कितने हाथ पैर पछाड़ते हैं? कितनी खराबियाँ करते हैं? कितना लोहू का पानी करते हैं? और कितना अन्याय करते हैं? मगर यह पृथ्वी क्या किसीकी होके रही है? पृथ्वी के भूखे राजा लोग यदि इसका विचार करें तो संसार से बहुत सा अनर्थ कम हो जाय।"

राज्य प्राप्त करने के लिए हुमायूँ को कितना कष्ट उठाना पड़ा था? कितनी भूख, प्यास सहनी पड़ी थी? दूसरों का आश्रय लेना पड़ा

था। पीछे से वहाँ भी तिरस्कृत होना पड़ा था। अपने प्यारे पुत्र को छोड़कर भाग जाना पड़ा था। सगे भाइयों और स्नेहियों के साथ वैर-विरोध करना पड़ा था। और तो क्या अपने सहोदरकी आँखें फोड़ने और उसकी आँखों में नींबू और नमक डालने के समान कूर कार्य भी करना पड़ा था। इतना करने पर भी हुमायूँ क्या सदा के लिए दिल्ली के राज्यका उपभोग कर सका? नहीं। दिल्ली की गद्दी पुनः प्राप्त करने के छः ही महीने बाद २४ जनवरी सन् १५५६ ईस्वी के दिन उसे अपनी सारी आशाओं को इस संसार की सतह पर छोड़ कर चल देना पड़ा, अपने पुस्तकालय के जीने से जब वह नीचे उतरता था उसका पैर फिसल गया और उसीसे उसके प्राणपखें उड़ गये।

उस समय अकबर पंजाबमें था। क्योंकि वह सन् १५५५ ईस्वीके नवम्बर महीने में पंजाब का सूबेदार बना कर वहाँ भेजा गया था। अकबर उस समय बहरामखाँ के निरीक्षण में सिंकंदरसूर के साथ युद्ध करनेमें लगा हुआ था। हुमायूँ जब मरा था उस समय दिल्ली का हाकिम तरादी बेगखाँ था। कहा जाता है कि, उसने सत्रह दिन तक तो हुमायूँ के मृत्यु- समाचार लोगों को मालूम भी न होने दिये। कारण यह था कि,—अकबर को राज्य मिलने में कहीं विघ्न न खड़ा हो जाये। इन्हीं दिनोंमें उसने ये समाचार एक विश्वस्त मनुष्य द्वारा पंजाबमें अकबर के पास भेज दिये थे। पिरू वत्सल अकबर ने जब ये शोक समाचार सुने तब उसे बहुत दुःख हुआ। उसने अपने पिताकी समाधि पर एक ऐसा उत्तम मंदिर बनवाया कि जो आज भी लोगों के दिलों को अपनी ओर खींच लेता है। दिल्लीमें जितनी चीजें देखने लायक हैं उन सबमें यह मंदिर अच्छा समझा जाता है।

पिताके मरते ही उसे गद्दी नहीं मिल गई थी। गद्दी प्राप्त करने के लिए उसे बहुत बड़ी लड़ाई करनी पड़ी। यद्यपि पहिले १४ फरवरी

सन् १५५६ ईस्वी के दिन 'गुरुदासपुर' जिल्ले के 'कलानौर' गाँव में उसका राज्याभिषेक हुआ था, तथापि दिल्ली के राज्याभिषेक में बहुत वक्त लग गया। दिल्ली का राज्य उसे शीघ्र ही नहीं मिला। इसका कारण यह था कि,— जिस समय हुमायूँ मरा था उस समय मुसलमानों में आपसी झगड़े बहुत बढ़ गये थे। इस आपसी कलह से लाभ उठा कर दिल्ली का राज्य अपने अधिकारमें कर लेने के लिए हेमू-जो पहिले आदिलशाह का मंत्री था—का जी ललचाया था। उसकी इच्छा थी कि, वह दिल्ली का राजा बनकर विक्रमादित्य हेमू के नामसे प्रसिद्ध हो। वह 'चुनार' और 'बंगाल' के विद्रोहों को शान्त करता हुआ आगे बढ़ा था। आगरा अनायास ही उसके हाथ आ गया और दिल्ली जीतने के लिए उसने कदम बढ़ाया था। उस समय दिल्लीकी हुकूमत तरादीबेगखाँ के हाथमें थी। वह हेमू से हारा और अपनी बची बचाई फौज लेकर पंजाबमें अकबर के पास भाग गया। दिल्ली की गदी प्राप्त कर हेमू को असीम आनंद हुआ। दिल्ली लेकर ही उसका लोभ शान्त नहीं हुआ। पंजाब को लेने की इच्छा से वह पंजाब की ओर रवाना हुआ।

उधर अकबरको खबर मिली कि, हेमूने दिल्ली और आगरा ले लिये हैं। इससे उसको बहुत चिन्ता हुई। उसने अपनी 'समरसभा' के मेम्बरों को जमा किया और उनसे पूछा कि, अब क्या करना चाहिए? बहुतसोने तो यही सलाह दी कि, जब चारों तरफ से हमें दुश्मनों ने घेर लिया है तब हमें चाहिए कि, इस वक्त हम काबुल का राज्य लेकर चुप हो रहें। मगर बहरामखाँ को यह सलाह पसंद न आई। उसने कहा—“नहीं हमें दिल्ली और आगरा फिर से अपने अधिकारमें लेना चाहिए।” अन्तमें बहरामखाँ की सलाह ही ठीक रही। अकबरने हेमू को परास्त कर दिल्ली पर अधिकार करने के लिए दिल्लीकी और

प्रस्थान किया। मार्गमें तरादीबेगखाँ अपने कुछ सैनिकों सहित मिला। बहरामखाँ ने उसे धोखा देकर मार डाला^१। वहाँ से आगे कुरुक्षेत्र के प्रसिद्ध मैदान में हेमू और अकबर की फौज की लड़ाई हुई। लड़ाईमें बहरामखाँ का एक तीर हेमू को लगा। हेमू हाथी से नीचे गीर पड़ा^२। उसकी फौज भाग गई। अकबरकी जीत हुई। फिर अकबर ने जाकर दिल्ली और आगरे पर अधिकार किया और बेखटके वह अपने बाप की गदी पर बेठा।

अकबर गदी पर बैठा उस समय भारतवर्ष की हालत बहुत ही खराब थी। करीब करीब सब जगह अव्यवस्था और अराजकता के चिह्न दिखाई देते थे। आर्थिक दशा लोगोंकी खराब थी। इसके कई कारण थे। एक कारण तो यह था कि—जिस देशकी राजकीय स्थिति ठीक नहीं होती है, अव्यवस्थित होती है उस देशकी आर्थिक हालत को जखर धक्का लगता है। दूसरा कारण यह था कि,—सन् १५५५ और ५६ ईस्वीमें लगातार दो बरस तक अकाल पड़े थे। तीसरे

१. तरादीबेगखाँ (तार्दिबेग) को किसने मारा? इस विषयमें इतिहास लेखकों के भिन्न २ मत हैं। इन मतोंका श्रीयुत बंकिमचंद्र लाडिडी ने अपनी 'सप्राट अकबर' नामकी बंगला पुस्तकमें उल्लेख किया है। बदाउनी कहता है कि—“बहरामखाँ ने अकबर की सम्मति से उसे मारा था।” फरिश्ता ने लिखा है कि—“बहरामखाँ ने अकबर को कहा—आप बहुत ही दयालु है? यदि आपको कहता तो आप उसे क्षमा कर देते। इसलिए आपकी इजाजत लिए बिना ही मेने उसे मार डाला है। यह बात सुनकर अकबर काँप उठा।” आदि

२. हेमू की मृत्युके संबंधमें भी भिन्न भिन्न मत है। अहमद यादगार ने लिखा है कि—“अकबर के हुक्म से बहरामखाँ ने हेमू के शिर को उसके अपवित्र शरीर से अलग किया था।” अबुलफजलने फैजीसरहिन्दीने और बदाउनीने लिखा है कि—“अकबर ने हेमू पर शख्त चलाने से इन्कार किया। इसलिए बहरामखाँने उसका (हेमूका) सिर काट डाला।”

लड़ाइयाँ हो रही थीं इससे आगरा, दिल्ली तथा इनके आसपास के सब प्रदेश ऊजड़-वीरान से हो गये थे।

अकबर ने, सिंहासनारूढ़ होने पर देशकी हालत सुधारने और अपने पिता के समयमें जो प्रान्त चले गये थे उनको वापिस लेने की और ध्यान दिया। कारण-उस समय भारत के भिन्न भिन्न प्रान्त स्वतंत्र हो रहे थे। जैसे-

काबुल। यद्यपि यहाँ का राज्य अकबरके भाई के नाम से होता था, परन्तु वास्तवमें तो वह स्वतंत्र ही था। बंगाल। यह अफगान सर्दारों के अधिकार में था और दो सौ से भी ज्यादा वर्ष पहिले से वह स्वतंत्र हो गया था। राजपूताने के राज्य। ये जबसे बाबर हारा तभी से अच्छी हालतमें आ गये थे और अपने अपने राज्यमें स्वाधीनता से राज्य करते थे। मालवा और गुजरात तो बहुत पहिले ही से दिल्ली के अधिकार से निकल गये थे। गोंडवाणा और मध्य प्रान्त के राज्य अपने उन्हीं सर्दारों का सम्मान करते थे कि जो अपने ऊपर किसीको भी नहीं समझते थे। ओरिसा के राज्यने तो किसीको स्वामी करके माना ही न था। दक्षिणमें खानदेश, बराड़, बेदर, अहमदनगर, गोलकांडा और बीजापुर आदिमें वहाँ के सुल्तान ही राज्य करते थे। वे दिल्ली के बादशाह के नाम तककी परवाह नहीं करते थे। दक्षिणमें वहाँ से आगे बढ़कर देखेंगे तो मालूम होगा कि—कृष्णा और तुंगभद्रा से लेकर केपकुमारी तक का प्रदेश विजयनगर के राजा के अधिकारमें था। उस समय विजयनगर का राज्य बहुत ही जाहोजलाली पर था। गोवा और ऐसे ही दूसरे कुछ बंदरों पर पोर्टुगीजों ने कब्जा कर रखा था। अरबी समुद्र में उनके जहाज चलते थे। उत्तर में काश्मीर, सिंध और बिलोचिस्तान तथा ऐसे ही कई दूसरे राज्य बिलकुल स्वाधीन थे।

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि अकबर जब गद्दी पर बैठा था उस समय हिन्दुस्तान का बहुत बड़ा भाग स्वाधीन था। अकबर के अधिकार में बहुत ही कम प्रान्त थे। इससे उसके हृदयमें दूसरे प्रदेशों को अपने अधिकारमें करने की इच्छा का उत्पन्न होना स्वाभाविक था।

अकबरने अपनी कचहरी के रिवाज तीन प्रकार के रखेथे। १ तुर्की, २ मांगल और ३ ईरानी। ऐसा करने का सबब यह था कि,—अकबर पितृपक्षमें तैमूरलंग के खानदान का था। तैमूर तूर्की था। इसलिए उसने तुर्की रिवाज रखा था। मातृपक्षमें वह चंगेजखाँ के वंश का था। चंगेजखाँ मुगल था, इसलिए उसने माँगल रिवाज भी रखा था और अकबर की माता ईरानकी थी इसलिए उसने ईरानी रिवाज भी रखा था। अकबर के राजत्व के आरंभमें हिन्दुओं के रिवाजों का प्रभाव बहुत ही कम पड़ा था। उसके रिवाज जैसे तीन भागोंमें विभक्त थे वैसे ही उसके नौकर-हुजूरिए भी दो भागोंमें विभक्त थे। एक भाग में थे तुर्क और मांगल अथवा चगताई और उजवेग व दूसरे विभागमें थे ईरानी। कहा जाता है कि, अकबर अपने समयमें शेरशाह के वक्त के कानूनों को विशेष करके व्यवहारमें लाया था। और नहीं तो भी उसने आय विभाग में तो जरूर ही सुधार किया था। यह शेरशाह वही है कि, जिसने हुमायूँ को सन् १५३१ ईस्वीमें चौसा और कन्नौज के पास परास्त किया था। उसका असल नाम शेरखाँ था मगर गद्दी पर वह शेरशाह नाम धारण करके बैठा था। इस शेरशाह ने सन् १५४५ ईस्वी तक दिल्लीमें रहकर कई सुधार किये थे।

कइयोंका मत है कि, अकबर ने दीवानी और फौजदारी से संबंध रखनेवाले खास कानून नहीं बनाये थे। न उससे संबंध रखनेवाले रजिस्टर या खतौनिया आदि ही बनाई थीं। करीब करीब सब बातें वह जबानी ही करता था और किसीको यदि कुछ दंड देता था तो वह 'कुरानशरीफ' के नियमानुसार देता था।

अकबर अठारह बरस का हुआ तब तक उसके संरक्षक का कार्य बहरामखाँ करता था। इतना ही नहीं यदि यह कहें कि, राज्यकी पूरी सत्ता बहरामखाँ के हाथमें थी तो अनुचित न होगा। बहरामखाँ पर अकबर का भी पूर्ण विश्वास था। मगर उस विश्वास का बहरामखाँ ने दुरुपयोग किया था। यद्यपि अकबर पीछे से यह जान गया था कि, बहरामखाँ महान् कूर और अन्यायी है, यह जानते हुए भी वह हरेक बात को उपेक्षा की दृष्टि से देखता रहा, तथापि बहरामखाँ के अन्याय की मात्रा प्रतिदिन बढ़ती ही रही थी। बहरामखाँ जैसा अन्यायी था, वैसा ही उद्धत, कठोरभाषी, निष्ठुर हृदयी और पतित चरित्रवाला भी था। साधारण से साधारण मनुष्य के लिए भी जब ये दुर्गुण घातक होते हैं तब जो शासनकर्ता है उसके लिए तो निःसंदेह होवे हीं। अस्तु। अकबर बहरामखाँ के साथ वैमनस्य न हो इस बात का पूरा ख्याल रखता था। मगर कहावत है कि,—‘ज्यादा थोड़े के लिए होता है।’ अथवा ‘अति सर्वत्र वर्जयेत्’ अन्तमें अकबर की इच्छा हुई कि, वह सम्पूर्ण राज्यसत्ता अपने हाथमें ले; परन्तु इस काममें उसने जल्दी करना ठीक न समझा। युक्तिपूर्वक काम लेना ही उसे ठीक जचा।

एकबार अकबर कुछ आदमियों को साथ लेकर शिकारके लिए चला। शिकारगाही में ही उसे अपनी माताकी बीमारी की खबर मिली। खबर सुनकर वह दिल्ली गया। वहाँ जाकर उसने अपने सारे राज्यमें यह ढिंढोरा पिटवा दिया कि,—“मैने राज्य का सारा कामकाज अपने हाथमें ले लिया है। इसलिए मेरे सिवाय किसी दुसरे की आज्ञा आज से न मानी जाय।” सन् १५६० ईस्वीमें जब यह ढिंढोरा पिटवाया तब उसने बहरामखाँ के पास भी एक नम्रतापूर्ण पत्र भेजा। उसमें लिखा—“आज तक मैने आपकी सज्जनता और विश्वास पर सारा राज्य भार छोड़कर निर्भयता के साथ आनंद का उपभोग किया। अबसे राज्यका भार मैने स्वयं उठाया है। आप मक्का जाना चाहते थे, अतः अब आप

खुशीके साथ मक्का तशरीफ ले जाये। आपको भारतवर्ष का एक प्रान्त भेट किया जायेगा। आप उसके जागीरदार होंगे। उसकी जो आमदनी होगी उसे आपके नौकर आपके पास भेज दिया करेंगे।” इससे बहरामखाँ अकबर का दुश्मन बन गया। वह मक्का का नाम लेकर आगे से रवाना हुआ। मगर मक्का न जाकर पंजाबमें गया, कारण—उसने अकबर के साथ सुदूर करना ठाना था। यह खबर अकबर को पहिले से ही मिल गई थी। इसलिए उसने अपनी फौज पंजाबमें भेज दी। लडाई हुई। अकबर के सेनापति मुनीमखाँ ने सन् १५६० ईस्वीमें बहरामखाँ को कैद कर दिया।

इस तरह राज्यकी बागडोर अकबर ने अपने हाथमें ले ली थी, तो भी वह खराब सोहबत से एकदम बच न सका था। कहा जाता है कि, वह तीन बरस के बाद बुरी सोहबत से निकलकर सर्वथा स्वाधीन हुआ था।

जहाँ देखो वहाँ राजाओंमें यह दुर्गुण होता ही है। अपनी बुद्धिसे काम करनेवाले और पूरी जाँच के साथ न्याय करनेवाले राजा बहुत ही थोड़े होते हैं। अपने पास रहनेवाले लोगोंकी बातों पर चलनेवाले राजा प्रायः ज्यादा होते हैं। अभी कई देशी राज्योंकी प्रजा अपने राजाओं को उपेक्षा की दृष्टि से देखती है या उनसे घृणा करती है, इसका कारण यही है कि, वे (राजा) जो आज्ञाएँ प्रकाशित करते हैं बेसोचे समझे और किसी बातकी जाँच किये बिना करते हैं। उनके पास रहनेवाले खुशामदी दर्बारी राजा को खुश करने की गरज से या अपना कोई मतलब बनाने के लिए राजाको उल्टी सीधी बातें समझा देते हैं और राजा उसीके मुवाफ़िक हुक्म जारी कर देते हैं। उसीका परिणाम है कि आजकल राजा और प्रजाके बीच मन-मुटाब हो रहा है। वास्तवमें तो राजाको हरेक बात की जाँच करके ही काम करना चाहिए। उसके कामों से किसी पर अन्याय नहीं होना चाहिए। अकबर

का प्रारंभिक काल भी करीब करीब ऐसा ही था। यानी खुशामदी दर्बारियोंके भरोसे ही राजकाज चलता था। मगर पीछे से वह (अकबर) अपनी बुद्धि से कार्य करना ही विशेष पसंद करने लगा।

सन् १५६२ ईस्वीमें, यानी जब वह बीस बरस का हुआ, तब प्रजाकी असली हालत जानने के लिए उसने फकीरों और साधु सन्तों का सहवास करना शुरू किया। यह है भी ठीक कि, निष्पक्ष त्यागी फकीरों और साधुओं के जरिए प्रजा की असली हालत अच्छी तरह से मालूम हो सकती है। वर्तमानमें तो प्रायः राजा लोग साधु-फकीरों से मिलनेमें भी पाप समझते हैं। अस्तु। साधु-फकीरों से मिलने में अकबर को इतना आनंद होता था कि, वह कई बार तो वेष बदल बदल कर उनसे मिलता था। साधुओं से मिलकर जैसे वह प्रजाकी असली हालत जानने की कोशिश करता था वैसे ही वह आत्माकी उन्नतिके साधनों का भी अन्वेषण करता था। अकबर ने कहा है कि:— “On the completion of my twentieth year” he said, “I experienced an internal bitterness, and from the lack of spiritual provision for my last journey my soul was seized with exceeding sorrow.”

भावार्थ—जब मैं बीस बरस का हुआ तब मेरे अंतःकरण में उग्र शोक का अनुभव हुआ था। और मुझे इस बात का बड़ा दुःख हुआ था कि, मैंने परलोक यात्रा के लिए (धर्मकृत्य नहीं किये) धार्मिक जीवन नहीं बिताया।

अकबर को तब तक के अनुभव से यह भी मालूम हुआ था कि, जिन जिन पर उसने विश्वास किया था वे सभी विश्वास करने लायक नहीं थे। उनमें के कइयोंने तो अकबर को मार डालने तक का भी प्रयत्न किया था।

तब तक अकबर की आय की भी अव्यवस्था ही थी। अकबर को जब यह बात मालूम हुई तब उसने सूरवंशीय राज्यके एक वफादार मनुष्य को नौकर रखा। उसे ऐतमादखाँ का अल्काब दिया गया था। उसने कई ऐसे नियम बनाये कि, जिनसे आमदनी से संबंध रखनेवाली सारी गड़बड़ी मिट गई और ठीक तरह से काम चलने लगा।

अकबर उसी साल यानी सन् १५६२ ईस्वीके जनवरी महीने में ख्वाजा मुइनुद्दीन की यात्रा करने के लिये अजमेर गया था। रास्तेमें दौसा गाँवमें ‘अम्बे’ (जयपुरकी पुरानी राजधानी) के राजा बिहारीमल ने अपनी बड़ी लड़की को अकबर के साथ व्याह देना स्वीकार किया। अकबर अजमेर से सीधा आगे गया और वहाँ से वापिस आकर साँभर में उसने हिन्दु-कन्या से व्याह किया। हिन्दु लड़की के साथ यह उसका पहिला ही व्याह था। (अकबर का लड़का जहाँगीर (सलीम) इसी खीसे उत्पन्न हुआ था) (ई. स. १५६९)

समस्त भारतमें एक छत्र साम्राज्य स्थापन करने की अकबर की आन्तरिक इच्छा थी। राष्ट्रीय दृष्टि से विचार करेंगे तो मालूम होगा कि, प्रजा उसी समयमें सुख से रह सकती है कि जब उसे किसी प्रतापी राजाकी छत्र-छायामें रहने का सौभाग्य मिले। अलग अलग स्वाधीन राजाओं के कारण हर वक्त लडाई झगड़े हुआ करते हैं और उनके कारण प्रजा की बर्बादी होती है। अतः अकबरने यह निश्चय किया कि, ‘एक ही राजा के अधिकारमें सारी प्रजा को रखना।’ इस लक्ष्य को सामने रखकर ही उसने छोटे बड़े जिलों को धीरे धीरे अपने अधिकारमें करना प्रारंभ किया था। और इस भाँति भारत के बहुत बड़े भागको अपने अधिकारमें करनेके लिए अकबरने लगातार बारह वर्ष तक युद्ध किया था। उसकी सारी युद्ध-यात्राओं का वर्णन न लिखकर यहाँ सिर्फ़ इतना ही लिख रहे हैं कि, उसे अपने उद्देश्य में बहुत कुछ सफलता मिली थी।

अकबर का विशेष परिचय प्राप्त करने के लिए अब उसके अन्यान्य गुण-अवगुणों का विचार किया जायगा।

यद्यपि अकबर मुसलमान कुलमें जन्मा था तथापि उसके हृदयमें दया के भाव अधिक थे। दीन-दुःखियों की सेवा करना और उनके दुःखोंको दूर करने का प्रयत्न करना वह अपना कर्तव्य समझता था। अपनी प्रजाओंचाहे वह हिन्दु हो या मुसलमान-दुःख देना, सताना वह पाप समझता था। प्रजाके प्रति राजाके क्या कर्तव्य हैं सो वह भली प्रकार जानता था। मयूर जैसे पाँखोसे ही शोभता है वैसे ही राजा भी प्रजा से ही सुशोभित होता है। अर्थात् प्रजा की शोभा से ही राजाकी शोभा रहेती है। अकबर इस बात को भली प्रकार जानता था। इसी लिए वह ऐसे काम नहीं करता था जिनसे प्रजा को दुःख हो। वह प्रायः ऐसे ही कार्य करता था जिनसे प्रजा प्रसन्न और सुखी रहती थी। अर्थात् जहाँ जैसी आवश्यकता देखता वहाँ वैसे कार्य करा देता था। अकबर ने कई कार्य कराये थे। उन्हीमें फतेहपुर सीकरीमें बंधाया हुआ तालाब भी एक है। वहाँ पानी की तंगी थी। उसे दूर करने के लिए ही वह तालाब बँधवाया गया था। वह छ माइल लंबा और तीन माइल चौड़ा था। अब भी उसके चिन्ह मौजूद हैं जो अकबर की दयालुता की साक्षी दे रहे हैं। श्रीदेवविमलगणि ने अपने 'हीरसौभाग्य' काव्यमें इस तालाब का उल्लेख किया है और उसका 'डाबर' के नाम से परिचय दिया है।^१

'यात्रा' के नाम से जो कर वसूल किया जाता था, उसको

१. स श्रीकरीपुरमवासयदात्मशिल्पि-

सार्थेन डाबरसर सविधे धरेशः।

इन्द्रानुजात इव पुण्यजनेश्वरेण

श्रीद्वारकां जलधिगाधवसंनिधाने॥ ६३॥

(१० सर्ग)

उसने राज्य की लगाम अपने हाथमें लेने के बाद आठवें वर्षमें बंद कर दिया था। यह भी उसकी दयालु वृत्ति का ही परिणाम था। नववें वर्षमें उसने 'जजिया' के नाम से जो कर वसूल किया जाता था उसे भी बंद कर दिया था। (ई. स. १५६२) इन दोनों करों से पहिले प्रजा को बहुत ही ज्यादा कष्ट उठाना पड़ा था।

इस 'जजिया' की उत्पत्ति भारतमें कबसे हुई? इसका यद्यपि निश्चित समय निर्धारित नहीं किया जा सकता है तथापि उसके विषयमें प्रथम प्रकरणमें कुछ प्रकाश डाला जा चुका है। प्रसिद्ध इतिहास लेखक विन्सेंट स्मिथ के मतानुसार फीरोजशाह ने यह कर लगाया था और अकबर के समय तक चलना रहा था।

ऐसा कर जिसकी आमदनी लाखों ही नहीं बल्कि करोड़ों रुपये की होती थी उसने केवल अपनी दयापूर्ण वृत्ति से, प्रजाके हितार्थ बंद कर दिया, इससे हमको सहज ही में यह बात मालूम हो जाती है कि, अकबर मुसलमान बादशाह होकर भी अपनी प्रजाकी भलाई का कितना ख्याल रखता था। जिस आर्यप्रजा को मुसलमानी राज्यमें भी ऐसे जुल्मी करों से दूर रहने का सौभाग्य प्राप्त था उसीको आज आर्य राजाओं के अधिकारमें रहते हुए भी भिन्न भिन्न प्रकार के अनेक कठोर कर देने पड़ते हैं और अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं, यह बात क्या किसीसे छिपी हुई है? इस समय हमें केप्टन एलेक्झेंडर हेमिल्टन का-जो स्कॉटलैन्ड का रहनेवाला था और जो सन् १६८८ से १७२३ ईस्वी तक हिन्दुस्थानमें व्यापार करता रहा था—वचन याद आता है। वह कहता है:—

"स्वराज की अपेक्षा मुगलों के राज्यमें रहना हिन्दुलोगों को ज्यादा अच्छा लगता था। कारण-मुगलों ने लोगों पर कर का बोझा ज्यादा नहीं डाला था। जो कर देना पड़ता था उसका आधार हाकिमों

की मरजी पर नहीं था। वह पहिले से ही नियत था। लोग पहिले से ही जानते थे कि हमें कितने रुपये देने होंगे। मगर हिन्दु राजा अपनी इच्छाके अनुसार कर लगाते थे। उनके मन का द्रव्यलोभ ही लोगो से पैसे बसूल करने का प्रमाण माना जाता था। वे तुच्छ तुच्छ बातों के लिए पडौसियों से झगड़ा करते थे, युद्ध करते थे। इससे उनकी महत्वकांक्षा और मूर्खता का परिणाम सारी प्रजा को भोगना पड़ता था; उनको शारीरिक और आर्थिक बहुत सी यातनाएँ भोगनी पड़ती थी।”

(मुसलमानी रियासत (गुजराती) भा. १ ला पृष्ठ ४२६)

आज भी कई देशी रियासतें अपनी प्रजा को उपर्युक्त प्रकार का कर संबंधी-कष्ट दे रही हैं। कुछ अंगुलियों पर गिनने योग्य राजा ऐसे हैं जो प्रजाकी उन्नति के लिए निरन्तर सचेष्ट रहते हैं; और इस बात का ध्यान रखते हैं कि उनकी कृति से प्रजाको कहीं दुःख न हो। उनको छोड़कर भारतमें अब भी-विज्ञान के इस जमानेमें भी-ऐसी देशी रियासतें हैं कि जहाँ के हिन्दु राजा -आर्य राजा-ऐसे ऐसे काम करते हैं कि, जो मुसलमानों के सारे जुल्मी कामों को भुला देते हैं।

अफसोस! जो राजा आर्य होकर भी अपनी आर्य प्रजा से कठोर कर बसूल करते हैं, प्रजा को नाना प्रकार से सताते हैं; अहिंसक प्रजा के सामने हिंसा करते हैं और कराते हैं; प्रजा के हृदय को दुःख होगा, इसका तिल मात्र भी ख्याल नहीं करते हैं, वे वास्तवमें राजा नहीं हैं, प्रजा के मालिक नहीं हैं, बल्कि प्रजा के शत्रु हैं। जो राजा प्रजा को सताकर, उसको दुःख देकर हर तरह से अपना भंडार ही भरना चाहते हैं वे राजा कैसे कहे जा सकते हैं? इस पृथ्वी पर भंडार भरने के लिए कितने राजाओंने कितने अत्याचार किये? क्या किसीका भंडार सदा भरा रहा? अरे! केवल तुच्छ लक्ष्मी के लिए जिन्होंने

हजारों, लाखों ही नहीं बल्कि करोड़ों मनुष्यों को कत्ल किया, रक्त की नदियाँ बहाई वे भी क्या उस लक्ष्मी को अपने साथ ले गये? प्रजा पर जो राजा इतना जुल्म करते हैं, वे यदि सिर्फ इतना ही सोचते हों कि,—एक मनुष्य थोड़ा सा अपराध करता है उसको तो हम इसी भवमें दंड देकर उसके पाप का फल चखा देते हैं, तब हमें, जो हजारों, लाखों मनुष्यों को दुःख देने का अपराध करते हैं, उसका दंड कैसा मिलेगा? खेद की बात है कि बुद्धिमान् और विद्वान् मनुष्य भी स्वार्थ से अंधे होकर अपने पर्वत के समान अपराध को नहीं देख सकते हैं, वे अपने अधिकार के मदमें मस्त होकर इस बात को भूल जाते हैं कि,—‘भवान्तर में उन्हें पाप का कैसा दंड भोगना पड़ेगा।’

अकबर ने अपने दयापूर्ण अन्तःकरण के कारण ही प्रजा पर लगे हुए कठोर कर बंद कर दिये थे। उसने यह भी कानून बना दिया था कि,—मेरे राज्यमें कोई बैल, भैंस, भैंसे, घोड़े और ऊँट इन पशुओंको न मारे। उसने यह भी आज्ञा की थी कि कोई किसी स्त्री को उसकी इच्छा के विरुद्ध सती होने के लिए विवश न करे। उसने यह भी घोषणा करवा दी थी कि अमुक अमुक दिन कोई किसी जीव को न मारे। पिछली जिन्दगी में तो उसने इससे भी ज्यादा दयापूर्ण कार्य किये थे। उन कार्यों का वर्णन आगे किया जायेगा।

अकबर की इस दयापूर्ण वृत्तिको-दया-गुणको प्रकट करनेवाली उसकी उदारवृत्ति थी। अपने आश्रित मनुष्यों के कामों की कदर करना वह खूब जानता था। यह बिलकुल ठीक है कि, बड़ों का महत्व वे अपने आश्रितों की कदर करते हैं उसीसे होता है। अकबर इतना उदार था कि,— उसके दुश्मनमें भी कोई गुण होता था तो उसकी वह प्रशंसा करता था। इतना ही क्यों? दुश्मन होने पर भी उसके गुण पर मुग्ध होकर वह उसका नाम अमर करने के लिए यथासाध्य प्रयत्न करता था। उसका यहाँ हम एक उदाहरण देंगे।

अकबर ने जब चित्तौड़ पर चढ़ाई की और राजा के साथ तुमुल युद्ध हुआ, तब उसमें राजा के जयमल और पत्ता नामक दो वीरों ने, असाधारण वीरता का परिचय दिया। उनकी वीरता से अकबर को इतना भय हुआ कि, उसे अपनी जीतमें भी शंका हो गई। अकबर ने क्रूरता की। उससे जयमल और पत्ता मारे गये। यद्यपि अकबर ने उनके प्राण लिए तथापि वह उनकी असाधारण वीरता के गुण को न भूला। उसने आगे में जाकर उन दोनों की पत्थर की मूर्तियाँ आगे के किले में खड़ी करवाई। और अपनी कृति से लोगों को यह बताया कि,—वीर पुरुष यद्यपि देह त्याग कर चले जाते हैं; मगर उनका यशःशरीर हमेशा स्थिर रहता है, और साथ ही यह भी बताया कि, शत्रु के गुणोंकी भी इस भाँति कदर की जाती है। अकबर के ही समय के श्रावक कवि ऋषभदासने अकबर की मृत्यु के चौबीस बरस बाद 'हीरविजयसूरि रास' नामका गुजरातीमें एक ग्रन्थ लिखा है। उसके ८० वें पृष्ठ में वह लिखा है—

जयमल पताना गुण मन धरे, बे हाथी पत्थरना करे,
जयमल पता बेसार्या त्यांहि, ऐसा शूर नहीं जग माहि।

अकबर ने ये दोनों पुतले आगे के किले के सिंहद्वार के दोनों तरफ खड़े करवाये थे। मगर पीछे से उसके लड़के शाहजहाँ ने, जब दिल्ली बसाकर उसका नाम शाहजहाँबाद रखवा तब, उन जयमल और पता के पुतलोंको उठवा कर इस शाहजहाँबाद के सिंहद्वार के दोनों और खड़े किये। इन दोनों पुतलों को देखकर फ्रान्सिस बर्नियर ने जो १६५५ से १६६७ तक भारतमें रहा था अपने भ्रमणवृत्तान्तमें लिखा है कि,—

“किले के सिंहद्वार के दोनों तरफ पत्थर के बड़े बड़े दो हाथी हैं, उन्हें छोड़कर दूसरी कोई चीज यहाँ उल्लेख करने योग्य नहीं है। एक हाथी पर चित्तौड़ के सुप्रसिद्ध वीर जयमल की मूर्ति है और

दूसरे पर उसके भाई पता की। इन दोनों वीरोंने तथा इनसे भी विशेष साहस दिखानेवाली इनकी माताओंने विख्यात अकबर को रोक कर अविनाशी कीर्ति उत्पन्न की थी। उन्होंने अकबर से धेरे हुए नगर की रक्षा करना और अन्तमें, उद्घातपूर्वक आक्रमण करनेवालों से हार कर पीठ देने की अपेक्षा शत्रु पर आक्रमण करके प्राण त्याग करना विशेष उचित समझा था। इन्होंने इस तरह आश्वर्यकारक वीरता के साथ जीवन त्याग किया, इससे उनके शत्रुओंने उनकी मूर्तियाँ स्थापन कर उन्हें चिरस्मरणीय बना दिया। ये दोनों हाथियों की मूर्तियाँ और उन पर स्थापित दो वीरों की मूर्तियाँ अत्यन्त महिमा युक्त, अवर्णनीय सम्मान और भीति उत्पन्न करती हैं।^१

इससे यह प्रमाणित होता है कि, अकबर ने दोनों वीर पुरुषों की मूर्तियाँ हाथी पर बैठाई थीं। वास्तवमें अकबर ने अपनी इस कृति से 'रजब साँचे शूर के वैरी करें बखान' इस कहावत को चरितार्थ कर दिखाई थी। यद्यपि लोगों का कथन है कि, अकबर ने चित्तौड़ की लड़ाई में इतनी ज्यादा क्रूरता की थी कि उसके कारण वह दूसरा अलाउद्दीन खूनी या दूसरा शाहाबुद्दीन समझा जाने लगा था। इसलिए अपने इस कलंक को मिटाने की गरज से अर्थात् लोगों को सन्तुष्ट करने के अभिप्राय से उसने जयमल और पता के पुतले बनवाये थे, तथापि हम इस कथन से सहमत नहीं हैं। लोगों को सन्तुष्ट करने के इससे भी अच्छे दूसरे मार्ग थे। मगर उन पर न चलकर पुतले ही बनवाये इसका कारण उसकी गुणानुरागता ही है। कई विद्वान यह भी कहते हैं कि, उसने उक्त पुतले उस समय बनवाये थे जब वह मुसलमानी धर्म को छोड़कर हिन्दु धर्म को मानने लग गया था। मगर हमें तो इस कथनमें भी कोई तथ्य नहीं दिखता है। अस्तु।

१. देखो, बर्निअर के भ्रमणवृत्तान्तका बाँगला अनुवाद 'समसामयिक भारत' २१ वाँ खंड पृ० ३०४।

इस तरह अकबर, जिसमें जो गुण होता था उसके लिए उसका, अवश्य सम्मान करता था। इतना ही नहीं वह उसका हौसला भी बढ़ाता था। सुप्रसिद्ध बीरबल एक बार बिलकुल दरिद्र था। उस समय उसका नाम महेशदास था। मगर जब वह अकबर के दर्बारमें आया तब अकबर ने उसमें अनेक गुण देखकर उसे 'कविराय' के पद से विभूषित किया था। इतना ही नहीं, जैसे जैसे अकबर को विशेष रूपसे उसके गुणों का परिचय होता गया, वैसे ही वैसे वह विशेष रूपसे उस पर महरबानी करता गया। परिणाममें वही दरिद्र महेशदास ब्राह्मण दो हजार सेना का मालिक, 'राजा बीरबल' हुआ और अन्तमें वह 'नगर कोट' के राज्य का मालिक भी बना। बड़ोंकी महरबानी क्या नहीं कर सकती है?

इसी तरह सम्राटने प्रसिद्ध गवैये तानसेन को और अन्य कइयों को उनके गुणों से प्रसन्न होकर कुबेर भंडारी के रिश्तेदार बना दिये थे। अपने नायक सम्राटमें कई अकृतज्ञ राजाओं के समान उदारता नहीं थी कि वह उन (राजाओं) की भाँति किसीके गुणों से प्रसन्न होकर उसका नाक कटवाता और फिर उसे सोने का नाक बना देता।

अकबर की उदारता यहाँ तक बढ़ी हुई थी कि कई बार किसीके हजारों अपराधों को भूलकर भी उसके भयभीत अन्तःकरण को आश्वासन देता था। इसका हम एक उदाहरण देंगे।

ऊपर कहा जा चुका है कि, जिस बहरामखाँ को अकबर एक बक्त बहुत सम्मान देता था उसी बहरामखाँ ने अकबर के विरुद्ध कई षड्यंत्र रचे थे। इतना ही नहीं उसने अकबर का कट्टर शत्रु बनकर उसका राज्य छीन लेने का प्रयत्न भी किया था। इसी प्रयत्नमें जब वह पकड़ा गया और कैद करके अकबर के सामने लाया गया तब अकबर की उदारता अपना कार्य किये बिना न रही। अकबर ने अपने

कई अधिकारियों को सामने भेजकर उसका सम्मान किया। इतना ही नहीं, उसने जब बहरामखाँ को मौत के भय से थर थर काँपते हुए देखा, तब सिंहासन से उठ, उसका हाथ पकड़, उसे अपने दाहिनी तरफ सिंहासन पर ला बिठाया। वाह! अकबर वाह! तेरी उदारवृत्ति को कोटिशः धन्यवाद है।

प्रसिद्ध प्राप्त उच्च श्रेणी के मनुष्यों में जैसे अच्छे अच्छे गुण होते हैं, वैसे ही उनमें कई ऐसे अपलक्षण या अवगुण भी होते हैं कि, जिनके कारण वे सर्वतोभाव से लोकप्रिय नहीं हो सकते हैं। इतना ही क्यों, उन दुर्गुणों के कारण वे अपने कार्योंमें भी पीछे रह जाते हैं। अकबर जैसा शान्त था वैसा ही क्रोधी भी था, जैसा उदार था वैसा ही लोभी भी था, जैसा कार्यदक्ष था वैसा ही प्रमादी भी था, जैसा दयालु था वैसा ही क्रूर भी था और जैसा गंभीर था वैसा ही खिलाड़ी भी था। प्रकृति के नियमों के साथ क्या कोई ढंग कर सकता है? एक मनुष्यकी जितनी प्रशंसा करनी पड़ती है उतनी ही उसके दुर्गुणों के लिए धृणा भी दिखानी पड़ती है। अपनी गुणवाली प्रकृति को सब तरह से संभाल कर रखनेवाले पुरुष संसारमें बहुत ही कम होते हैं। मनुष्यों में जो दुर्गुण होते हैं उनमें से कई स्वाभाविक होते हैं, कई शौकिया होते हैं और कई संसर्गज होते हैं। सम्राटमें जो दुर्गुण थे वे भिन्न भिन्न प्रकार से उसमें पड़े थे। जीवन के प्रारंभ से ही उसको कारण भी वैसे ही मिले थे। पाँच बरस की आयुमें उसको शिक्षा देने के लिए जो शिक्षक रखा गया था उसने उसे अक्षरज्ञान के बजाय पक्षी ज्ञान दिया था। यह बात ऊपर कही जा चुकी है। इसीलिए, कहा जाता है कि, अकबर ने अपनी बाल्यावस्थामें २०००० कबूतर रखे थे और उनके दस वर्ग किये थे। इस भाँति अकबर के मस्तक पर बाल्यावस्था से ही खेल के संस्कार पड़े थे। जैसे जैसे उसकी आयु बढ़ती गई वैसे ही वैसे उस पर कई खराब व्यसन भी

अपना प्रभाव जमाते गये थे। सबसे पहिले तो उसमें मंदिरा का व्यसन असाधारण था। इस शराब के व्यसन से कई बार वह अपने खास खास कामों को भी भूल जाता था और जब नशा उतर जाता तब भी बड़ी कठिनता से उन्हें याद कर सकता था। इस व्यसन के कारण कई बार तो उससे ऐसा भी अविवेक हो जाता था कि, चाहे कैसे ही ऊँची श्रेणी के मनुष्य को उसने बुलाया होता, वह आया होता और उसके (अकबर के) मनमें उस समय मंदिरा पीने की याद आ जाती तो वह उससे नहीं मिलता। इस अकेली मंदिरा से ही वह सन्तुष्ट नहीं था। अफीम और पोस्त पीने का भी उसे बहुत ज्यादा व्यसन था। कई बार धर्मचार्यों से बात करता हुआ भी सोने लग जाता था। इसका कारण उसका व्यसन ही था। उसमें एक बहुत ही खराब आदत यह भी थी कि, वह लोगों को आपसमें लड़ा कर मजा देखता था। अपने मजे के लिए मनुष्य मनुष्य को पशुओं की तरह आपस में लडाना, राजा के लिए सद्गुण नहीं है। इसके सिवा जिस बहुत बड़े व्यसन से कई राजा लोग दूषित गिने जाते हैं, यानी जो व्यसन राजाओं के जातीय जीवन पर एक कलंक रूप समझा जाता है वह शिकार का व्यसन भी उसे बहुत ही ज्यादा था। चीतों से हरिणों का शिकार करने में उसे अत्यन्त खुशी होती थी। वह समय समय पर शिकार के लिए बाहर जाया करता था। अपने शिकार के शौक को पूरा करने में उसने लाखों ही नहीं बल्कि करोड़ों प्राणियों की जाने ली थीं।

जब एक तरफ हम राजाओंकी उदारता देखते हैं और दूसरी तरफ उनकी ऐसी शिकारी प्रवृत्ति देखते हैं तब हमें बड़ा ही आश्वर्य होता है।

मान लो कि—दो राजाओं के आपसमें वर्षों तक युद्ध हुआ हो, लाखों मनुष्य और करोड़ों रूपयों की आहुति हुई हो। उनमें से एक राजा दूसरे के लिए सोचता हो कि, यदि वह पकड़ा जाय तो उसके

टुकड़े टुकड़े कर डालूँ। जिस समय उसके हृदयमें ऐसे क्लूर परिणाम हों उसी समय यदि दूसरा राजा मुँहमें तिनका लेकर पहिले राजा के पास चला जाय तो क्या वह उसे मारेगा? नहीं, कदापि नहीं। वह यह सोचकर उसे छोड़ देगा कि,—यह मेरे सामने पशु होकर आया है इसको मैं क्या मारूँ? ऐसी उदारता दिखानेवाले राजा जब, घास खाकर अपना जीवन-निर्वाह करनेवाले, अपना दुःख दूसरों को नहीं कहनेवाले और हमेशा पीठ दिखाकर भागनेवाले पशुओं को मारते हैं तब बृद्ध आश्वर्य होता है? जिस तलवार या बंदूक का उपयोग राजा को अपनी प्रजा की (चाहे वे मनुष्य हों या पशु) रक्षा करने में करना चाहिए उसी तलवार या बंदुक का उपयोग जो राजा अपनी प्रजा का अन्त करने में करते हैं वे क्या अपने हथियारों को लज्जित नहीं करते हैं? शत्रुओं को ललकार कर उनका मुकाबिला करने की शक्ति को जलाजली देकर निर्दोष और घास पर अपना जीवन बितानेवाले पशुओं पर अपनी वीरता की आजमाइश करनेवाले वीर (!) क्या अपनी वीरता को लज्जित नहीं करते हैं? अपने एक नायकने-सप्राटने तो शिकार की हद ही कर दी थी। उसने समय समय पर जो शिकारे की थी उनका वर्णन न कर, केवल शिकार के एक ही प्रसंग का यहाँ वर्णन किया जाता है।

सन् १५६६ ईस्वीमें अकबर के भाई महम्मद हकीम ने अफगानिस्तान से आकर हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया। उसको परास्त करने के लिए अकबर आगे बढ़ा। अकबर के जाने से वह भाग गया। इससे अकबर को युद्ध करने का तो विशेष मौका न मिला, परन्तु उसने लाहोर के पास के एक जंगल में, दस माइल के घेरे में अपने पचास हजार सैनिकों के द्वारा एक महीने तक जंगली जानवरों को इकट्ठा करवाया। जब दस माइल के घेरे में जानवर इकट्ठे हो गये तब तलवार, भाले, बंदूक आदि से पाँच दिन तक, बड़ी ही

अकबर को अजमेर के ख्वाजामुइनुद्दीन चिश्ती पर बहुत श्रद्धा थी। इसीलिए उसने चित्तौड़ पर चढ़ाई की तब प्रतिज्ञा की थी कि, यदि मैं इस युद्धमें जीतूँगा तो, पैदल आकर ख्वाजा साहिब की यात्रा करूँगा। विजय प्राप्त करने के बाद प्रतिज्ञानुसार वह ता. २८ फरवरी को यात्रा के लिए रवाना हुआ था। गर्मी का मौसम था। कई स्त्रियाँ और अन्यान्य लोग भी उसके साथ पैदल ही चलते थे। उस समय माँडल में—जो चित्तौड़ से ४० माइल है—उसको अजमेर से आये हुए कई फकीर मिले। उन्होंने अकबर को कहा:—“हमें ख्वाजा साहिब ने स्वप्नमें कहा है कि, बादशाह को सवारीमें आना चाहिए।” इसीलिए बादशाह यहाँ से सवारीमें रवाना हुआ। जब अजमेर थोड़ी ही दुर रह गया तब सभी सवारी से उत्तर गये थे और पैदल चलकर अजमेर पहुँचे थे।

उसके कुछ ही साल बाद अर्थात् स० १५६९ में उसने रणथंभोर और कलिंजर भी राजाओं के पास से छीन लिया था। तदनन्तर स० १५७२-७३ में उसने गुजरात का बहुत बड़ा भाग अपने अधिकार में किया था। उस समय गुजरात का सुलतान मुजफ्फरशाह था। उसने बिना ही प्रयास अपना राज्य अकबर को अर्पण कर दिया था और आप भी अकबर की शरणमें चला गया था। यद्यपि सूरत, भरौच, बडौदा और चाँपानेर लेने में उसे कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी थीं, तथापि अन्तमें उसने उन्हें ले ही लिया था। कहा जाता है कि एकबार गुजरात की लडाई में सरनाल (यह स्थान ठासरा से पूर्वमें पाँच माइल है) के पास अकबर के प्राण खतरे में आ गिरे थे। वहाँ जयपुर के राजा भगवानदास और मानसिंह ने बड़ा शौर्य दिखाकर उसकी रक्षा की थी।

सन् १५७५ ईस्वीमें उसने बंगाल, बिहार और उडीसा इन तीनों प्रान्तों को बैसी ही क्रूरता और वीरता के साथ अपने अधिकार में किया था। इसके बाद तीन चार बरस शान्ति में बीते थे।

अकबर में लोभ प्रकृति कुछ ज्यादा थी। इसलिए वह खर्च कुछ कम रखता था। वह इतना जबर्दस्त सम्राट् था तो भी नियमित सेना तो केवल २५००० ही रखता था। उसने अपने आधीन राजाओं से अमुक रकम ‘खंडणी’ में लेने और आवश्यकता पड़ने पर फौजी मदद करने की शर्त कर रखी थी। जब सम्राट् ने सन् १५८१ में काबुल पर चढ़ाई की थी, तब उसकी फौज में ४५००० घुड़सवार और ५००० हाथी थे।

जैन कवि ऋषभदास ने ‘हीरविजयसूरि रास’ में अकबर की समृद्धि का वर्णन इस तरह किया है।

सोलह हजार हाथी, नौ लाख घोड़े, बीस हजार रथ, अठारह लाख पैदल (जिनके हाथों में ‘भाले’ और ‘गुरज’ शस्त्र रहते थे) सेना के सिवा चौदह हजार हरिण, बारह हजार चीते, पाँच सौ वाघ, सत्तर हजार शिकरे और बाईस हजार बाज आदि जानवर थे। सात हजार गवैये और गानेवाली श्रियाँ थी। इनके अलावा उसके दरबारमें पाँच सौ पंडित, पाँच सौ बडे प्रधान, बीस हजार अहलकार और दस हजार उमराव थे। उमरावों में— आजमखाँ, खानखाना, टोडरमल, शेख अबुलफजल, बीरबल, ऐतमादखाँ, कुतुबुद्दीन, शहाबखाँ, खानसाहिब, तलाखान, खानेकिलान, हासिमखाँ, कासिमखाँ, नौरंगखाँ, गुजरखाँ, परवेजखाँ, दौलतखाँ और निजामुद्दीन अहमद आदि मुख्य थे। अतगबेग और कल्याणराय ये अकबर के खास हुजूरिये थे और हर समय अकबर के पास ही रहते थे। और उसके यहाँ सोलह हजार सुखासन, पन्द्रह हजार पालखियाँ, आठ हजार नक्कारे, पाँच हजार मदनभेर, सात हजार ध्वजाएँ, पाँच सौ विरुद्बोलनेवाले-चारण, तीन सौ वैद्य, तीन सौ गंधर्व और सोलह सौ सुतार थे। छियासी मनुष्य अकबर को आभूषण पहिनाने वाले थे, छियासी शरीर पर मालिश करनेवाले थे, तीन सौ शास्त्र वाँचनेवाले पंडित थे और तीन सौ वाजिंत्र थे।”

कवि यह भी लिखता है कि,—“अकबर की अर्दली में क्षत्रिय, मुगल, हवशी, रोमी, रोहेला, अंगरेज और फिरंगी भी रहते थे। भोई भी उसके दरबार में बहुत थे। पाँच हजार भैंसे, बीस हजार कुते और बीस हजार वाघरी-चिड़ीमार भी थे। अकबर ने एक एक कोस के अन्तर से एक एक हजारी-छत्री भी बनवाई थी। ऐसे कुल मिलाकर एक सौ चौदह हजारी उसने बनवाये थे। प्रत्येक हजारी पर पाँच सौ पाँच सौंग बनवाकर सजाये थे। दस दस कोस के फासले से उसने एक एक धर्मशाला और एक एक कूआ भी बँधवाया था। इतना ही नहीं उन स्थानों में लोगों के आराम के लिए छायादार दरख्त भी लगवाये थे। एकबार उसने एक एक हरिण की खाल, दो दो सौंग और एक एक महोर भी शेखों के छत्तीस हजार घरों में ल्हाण-भाजी-की तौर बँटाये थे।”

एक दूसरे जैन कवि पं० दयाकुशल ने अकबर की मौजूदगी में ही-अकबर का स्वर्गवास हुआ उसके बारह बरस पहिले 'लाभोदयरास' नामकी एक पुस्तक बनाई है। उसमें अकबर के वर्णन में लिखा है—

“अकबर बड़ा ही हठी था। उसका नाम सुनते ही लोग काँपते थे। उसने चितौड़, कुंभलमेर (कुंभलगढ़), अजमेर, समाना, जोधपुर, जैसलमैर, जूनागढ़, सूरत, भड़ोच, माँडवगढ़, रणथंभोर, सियालकोट और रोहितास आदि किले लिये थे। गौड़ आदि कई देश भी उसने अपने अधिकृत किये थे। बड़े बड़े राजा महाराजा उसकी सेवा करते थे। रोमी, फिरंगी, हिन्दु, मुळा, काजी और पठान आदि कोई ऐसा नहीं था जो उसकी आज्ञा का उल्लंघन करता।”

अकबर की सेना के संबंध में अबुलफजल लिखता है—“सप्राट के पास ४४ लाख सैनिक थे। उनमें का बहुत बड़ा भाग उसे जागीरदारों की ओर से ही मिला था।”

फिच लिखता है—“कहा जाता है कि, अकबर के पास १००० हाथी, ३०००० घोड़े, १४०० पालतू हिरण, ८०० रक्खी हुई स्त्रियाँ थी और इनके अलावा चीते, वाघ, भैंसे और मुर्गे वगैरा बहुत कुछ था।”

अकबर की सेना आदि के विषय में भिन्न २ मत हैं। जिनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। इसमें अकबर के पास वास्तव में कितनी सेना थी सो निश्चित करना यदि असंभव नहीं तो भी कष्टसाध्य अवश्य है। मगर इतना अनुमान किया ही जा सकता है कि भिन्न भिन्न लेखकों ने भिन्न भिन्न दृष्टि बिंदुओं से उक्त वर्णन लिखा है। अस्तु। इस बातको एक और रख दें तो भी इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि, अकबर लोभी था। उसीका यह परिणाम है कि, वह जब मरा तब सिर्फ आगरे के किले के खजाने में दो करोड़ पौँड (तीस करोड़ रुपये) की कीमत के तो सिर्फ सिक्के ही निकले थे। अन्य छः तिजोरियों में भी इतने ही सिक्के भरे हुए थे। विन्सेंट स्मिथ कहता है कि, इस समय की स्थिति को देखते हुए तो वह मिल्कियत बीस करोड़ पौँड की (तीन अरब रुपये की) कही जा सकती है।

अकबर का अन्तःपुर (ज़्नानखाना) एक बड़े कस्बे के समान था। उसके अन्तःपुर में ५००० स्त्रियाँ थी। प्रत्येक के रहने के लिए भिन्न भिन्न मंकान थे। उन स्त्रियों को अमुक अमुक संख्या में विभक्त कर प्रत्येक विभाग पर एक एक स्त्री दारोगा नियत की हुई थी। और उनके खर्च का हिसाब रखने के लिए क्लार्क रखवे गये थे।

अकबर ने 'फतेहपुर-सीकरी' में एक ऐसा महल बनाया था कि, जिसकी सारी इमारत केवल एक ही स्तंभ पर खड़ी की गई थी। यह महल 'एक थंभे का महल' के नाम से मशहूर है। कवि देवविमलगणि ने भी अपने 'हीरसौभाग्य' नामक काव्य के १० वे

सर्ग के ७५ वे श्लोक में इस एक स्तंभवाले महल का उल्लेख किया है।^१

अर्थात्-जैसे एक नालके उपर कमल सुशोभित होता है, वैसे ही एक स्तंभ पर खड़ा हुआ अकबर का महल सुशोभित होता है।

अब अकबर के विषय की सिर्फ एक बात लिखकर उसका परिचय स्थगित करेंगे। इसी प्रकरण में एक जगह कहा गया है वैसे, अकबर के हृदयमें कुछ धर्म संस्कार की मात्रा जरूर थी। उसेके हृदयमें बारबार यह सवाल उठा करता था कि, जिसके लिए लोगोमें इतना आन्दोलन हो रहा है वह धर्म चीज क्या है? और उसका वास्तविक तत्त्व क्या है? उसके हृदय में यह सवाल उठा उसके पहिले ही; दूसरे शब्दोमें कहें तो उसके हृदय में वास्तविक धर्म की तलाश करने की इच्छा पैदा हुई उसके पहिले ही उसके मन में मुसलमानी धर्म पर अरुचि हो गई थी। इसके साथ ही उसके हृदय में हिन्दु मुसलमानों को एक करने की भावना भी उत्पन्न हुई थी। उस इच्छा को पूर्ण करने के ही लिए उसने सन् १५७९ ईस्वीमें 'ईश्वर का धर्म' (दीन-इ-इलाही) नामके एक नये धर्म की स्थापना की थी और इस नवीन धर्म में हिन्दु मुसलमानों को सम्मिलित करने का प्रयत्न करता था। इस प्रयत्नमें उसको बहुत कुछ सफलता भी मिली थी।

कइयों का मत है कि, अकबर मानाभिलाषी ज्यादा था। यहाँ तक कि वह अपना 'ईश्वरीय अंश' की तरह परिचय देता था। इसी इच्छा से उसने इस नवीन धर्म की स्थापना की थी। लोगों को कुछ न कुछ चमत्कार दिखाना उसे ज्यादा अच्छा लगता था। रोगी का रोग

१. “उन्नालनीरजधिव श्रियमापदेक-
स्तंभं निकेतनमकब्बरभूमिमानोः।”

मिटाने के लिए वह अपने पैर का धोया हुआ पानी देता था। उसके चमत्कार के लिए धीरे धीरे उसकी दूकान अच्छी जम गई थी। उसका प्रभाव यहाँ तक बढ़ा कि, बच्चे के लिए कई स्त्रियाँ उसके नाम से मानत भी रखने लगी थी। जिनकी इच्छा पूर्ण हो जाती थी वह मानत पूर्ण करने आती थी। अकबर भी वे जो कुछ चीजे लेकर आती थी उसका स्वीकार करता था।

अकबर के उपर्युक्त वर्ताव से और नवीन धर्म की स्थापना से बहुत से मुसलमान उसका विरोध करने लगे थे। परिणाम यह हुआ कि, सन् १५८२ ईस्वीमें अकबर भी प्रकट रूप से मुसलमान धर्म का विरोधी हो गया था। खुले तोर से मुसलमान धर्म का विरोधी बना, इसके पहिले ही उसने हिन्दु और मुसलमान दोनों के साथ समान रूप से वर्ताव करना प्रारंभ कर दिया था। यह वर्ताव उसने उस समय से शुरू किया था, जब वह अंधे श्रद्धालु मुसलमान जान पड़ता था। बाद में यद्यपि उसके विचारों में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया था, वह करीब करीब हिन्दुओं के समान ही हो गया था, तथापि उनके लिए कोई निश्चयरूप से यह नहीं कह सकता था कि—अकबर अमुक धर्म को माननेवाला है। और तो क्या उसके विचार जानने का भी किसी में सामर्थ्य नहीं था। इसके लिए ईसाई पादरी बार्टोली (Bartoli)-जो अकबर के समय में मौजूद था—लिखता है—

"He never gave anybody the chance to understand rightly his inmost sentiments, or to know what faith or religion he held by....And in all business, this was the characteristic manner of King Akbar-a man Apparently free from mystery of guile as honest and candid as could be imagined, but in reality, so close and self-contained, with twists of words and deeds so divergent one from the other, and most times so contradictory, that even by much seeking one could not find the clue to his thoughts.*

*Akbar The Great Mogul, Page. 73.

अर्थात्—वह अपने आन्तरिक विचारों को जानने का या वह किस धर्म या किस मत के अनुसार वर्ताव करता है सो समझने का कभी किसी को भी मौका नहीं देता था। उसके हरेक काम में यह खूबी थी कि, वह बाह्यतः भेद और प्रपञ्च से दूर रहता था; और जितनी कल्पना की जा सकती है उतना प्रामाणिक और बेलाग रहता था; मगर वास्तव में था वह बड़ा ही गहरा और स्वतंत्र। उसके वचन इस प्रकार के शब्दों में निकलते थे कि, जिनके दो अर्थ हो जाते थे, कई बार तो उसके कार्य वचनों से इतने विरुद्ध होते थे कि, बहुत खोज करने पर भी उसके आन्तरिक भाव जानने की कुंजी नहीं मिलती थी।

इससे मालूम होता है कि, अकबर की स्थिति धार्मिक विषय में या तो अधकचरी थी—अव्यवस्थित थी या उसे कोई जान ही नहीं सका था। अस्तु। अकबर की आगे की जिन्दगी का वर्णन आगे के लिए छोड़कर अभी तो इतने परिचय पर ही संतोष करेंगे।

प्रकरण चौथा ।

आमंत्रण ।

गत प्रकरण में यह कहा जा चुका है कि, अकबर ने सन् १५७९ ईस्वी में 'दीने-इलाही' नाम के एक स्वतंत्र धर्म की स्थापना की थी। स्वाधीन धर्म की स्थापना करने के पहिले उसने सन् १५७५ ईस्वी में एक 'इबादतखाना' स्थापन किया था। उसको हम 'धर्मसभा' के नाम से पहचानेंगे। इस सभा में उसने प्रारंभ में तो भिन्न भिन्न मुसलमान धर्म के फिर्कों के मौलियियों को-विद्वानों को ही सम्मिलित किया था। वे आपस में वाद-विवाद करते थे, और अकबर उसको ध्यानपूर्वक सुनता था। खास तरह से शुक्रवार के दिन तो इस सभा में वह बहुत ही ज्यादा वक्त गुजारता था। लगभग तीन बरस तक तो केवल मुसलमान ही इसमें शामिल होकर धर्मचर्चा करते रहे, मगर उसका परिणाम अच्छा नहीं हुआ। अकबर के सामने जो मुसलमान वादविवाद करते थे उसने पक्ष बँध गये थे। इसलिये वे एक पक्षवाले दूसरे पक्षवाले को झूठ साबित करने के ही प्रयत्न करते रहते थे। पक्ष खास तरह से दो थे। एक का नेता था, 'मर्घ्वल्मुल्क' और दूसरे का नेता था 'अबदुल्नवी'। इसको 'सदरे सदूर' की पदवी थी। इन दोनों में शान्त धर्मवाद के बजाय क्लेशकारी वित्तावाद होने लगा। इससे अकबर को—'वादे वादे जायते तत्त्वबोधः' के बजाय विपरीत ही फल मिलने लगा। आखिरकार झगड़ा बहुत बढ़ गया। इससे अकबर दोनों से उपराम हो गया। अकबर के दरबार में रहनेवाले कट्टर मुसलमान बदाउनी, धर्मसभा में बेठनेवाले मौलियियों में जो झगड़ा होता था उसके लिए लिखता है—

"There he used to spend much time in Ibadat-Khanah in the Company of learned men and Shaikhs. And especially on Friday nights, when he would sit up there the whole night continually occupied in discussing questions of religion, whether fundamental or collateral. The learned men used to draw the sword of the tongue on the battle-field of mutual contradiction and opposition, and the antagonism of the sects reached such a pitch that they would call one another fools and heretics."

(Al-Badaoni, Translated by W. H. Lowe
M. A. Vol. II. P. 262)

अर्थात्—बादशाह अपना बहुत ज्यादा वक्त इबादत-खाने में शेखों और विद्वानों की संगति में रहकर गुजारता था। खास तरह से शुक्रवार की रात में—जिसमें वह रातभर जागता रहता था—किसी मुख्य तत्त्व की या किसी अवान्तर विषय की चर्चा करने में निमग्न रहता था। उस समय विद्वान् और शेख, पारस्परिक विरुद्धोक्ति और मुकाबिला करने की रणभूमि में अपनी जीभरूपी तलवार का उपयोग करते थे। पक्ष समर्थकारों में इतना वितंडावाद खड़ा हो जाता था कि, एक पक्षवाला दूसरे पक्षवालों को बेवकूफ और ढाँगी बताने लग जाता था।

मुसलमानों की इस लडाई के सबब से ही अकबर ने मुसलमानों के उल्माओं (धर्मगुरुओं) से एक इकरारनामा लिखवा लिया था। उसमें लिखा था कि,—“जब जब मतभेद हो तब तब उसका फैसला देने का और कुरानेशरीफ के हुक्मों के माफिक् धर्म में तबदीली करने का बादशाह को हक है।” शेख मुबारिक ने यह इकरारनामा लिखा था और दूसरे उल्माओं ने (मुसलमान धर्मगुरुओंने) उस पर हस्ताक्षर किये थे। (सं. १५७९)। इसके बाद भी बादशाह ने उल्माओं के उपर्युक्त प्रधान को और खास न्यायाधीश को नौकरी से बरतरफ कर दिया था।

कहा जाता है कि, जब मुसलमानी धर्म पर से उसकी श्रद्धा हट गई और जब उस पर वह नाराज हुआ था तब साफ़ साफ़ लफ़जोंमें वह कहने लगा था कि,—“जिस महम्मद ने दस बरस की छोकरी आयेशा के साथ ब्याह किया था और जिसने खास अपने दत्तक पुत्र की ख्वी जैनाब के साथ—जिसको उसके पतिने तलाक़ दे दी थी—ब्याह कर लिया था वही-ऐसा अनाचार करनेवाला महम्मद कैसे ‘पैगम्बर’—परमेश्वर का दूत हो सकता है?”

इस तरह जब मुसलमान धर्म से उसकी रुचि हट गई तब वह हिन्दु, जैन, पारसी और ईसाई धर्म के विद्वानों को बुलाकर अपनी सभामें सम्मिलित करने लगा। और तभी से वह भिन्न धर्म के विद्वान् पुरुषों की संगतिमें बैठने और उनमें होनेवाली धर्मचर्चा को सुनने लगा। उसने अपनी सभामें हरेक धर्म के विद्वानों को अपने अपने मन्त्रव्य प्रकट करने की छुट्टी दी थी। इससे विद्वान् लोग बड़ी ही गंभीरता और बड़ी ही शान्ति के साथ धर्मचर्चा करते थे। उससे अकबर को बहुत आनन्द होता था। मुसलमानों के विद्वानों पर से तो उसकी श्रद्धा बिलकुल ही हट गई थी। और तो और उसने मसजिद तक में आना छोड़ दिया था। वह तो अपनी धर्मसभा में बैठकर धर्मचर्चा सुनना और उसमें से सार हो उसको ग्रहण करना ही ज्यादा पसंद करने लगा था। अबुलफज़ल लिखता है कि,—“अकबर अपनी धर्मसभा में इतना रस लेने लगा था कि, उसने अपनी कोर्ट को तत्त्व शोधकों का वास्तविक घर बना दिया था।”

“The Shahanshah's court became the home of inquirers of the seven climes and the assemblage of the wise of every religion and sect.”

(Akbarnama, Translated by H. Beveridge
Vol. III. P. 366)

अर्थात्—शहनशाह का दरबार सातो प्रदेशों (पृथ्वी के भागों) के शोध कों का और प्रत्येक धर्म तथा संप्रदाय के बुद्धिमान् मनुष्यों का घर हो गया था।

डॉ. विन्सेंट स्मिथ का मत है कि, अकबर की इस धर्मसभामें सबसे पहिले सन् १५७८ ईस्वीमें एक पारसी विद्वान् सम्मिलित हुआ था। वह नवसारी (गुजरात) से आया था। उसका नाम था दस्तूर मेहरजी राणा। पारसी लोग उसे 'मोबेद' के नाम से पुकारते हैं। यह विद्वान् सन् १५७९ ईस्वी तक वहाँ रहा था। उसके बाद गोवा से तीन ईसाई पादरी आकर उसमें शामिल हुए थे। उनके नाम थे—१ फादर रिडोल्फो एक्वेवीवा (Father Ridolfo) २-मॉन्सिराट (Monserrate) और ३-एनरीशेज (Enrichez)

यहाँ यह बता देना भी आवश्यक है कि, अकबर ने अपने इस सभा के मेम्बरों को पाँच भागों में विभक्त किया था। उनमें कुल मिलाकर १४० मेम्बर थे। 'आईन-इ-अकबरी' (अंग्रेजी अनुवाद) के दूसरे भाग के तीसरे आईन के अन्तमें इन मेम्बरों की सूची दी गई है। उनमें ५३७-५३८ वें पेजमें प्रथम श्रेणी के मेम्बरों का नाम है। उनमें सबसे पहिला नाम शेख मुबारिक का है। यह अबुजफलज का पिता था। सबसे अन्त में 'आदित्य' नामक किसी हिन्दु का नाम है। प्रारंभ के बारह नाम मुसलमानों के हैं और बाद के ८ नाम सोलहवीं संख्या को छोड़कर हिन्दुओं के मालूम होते हैं। सोलहवाँ नाम है 'हरिजीसूर' (Hariji Sur) ये हरिजीसूर ही अपने ग्रंथ के नायक हैं। जिनको हम हीरविजयसूरि के नाम से पहचानते हैं।

अब यह बताया जायगा कि, हीरविजयसूरि के साथ अकबर बादशाह का संबंध कैसे हुआ?

एकबार अकबर शाही महल के झरोखे में बैठकर नगर की

शोभा देख रहा था। उस समय उसको बाजे बजते हुए सुनाई दिये। बाजे की आवाज को सुनकर उसने अपने नौकर से-जो उसके पास ही खड़ा था, पूछा:-“यह धूम धाम क्या है?” उसने उत्तर दिया:-“चंपा नाम की एक श्राविका ने छ: महीने के उपवास किये हैं।^१ इन उपवासों में पानी के सिवा और कोई चीज नहीं खाई जाती है। पानी भी जब बहुत आवश्यकता होती है तब और वह भी गर्म और दिन के समयमें ही पिया जा सकता है।”

“छ: महीने के उपवास” इस वाक्य को सुनकर अकबर को आश्र्य हुआ। उसने सोचा-जब मुसलमान लोग सिर्फ एक महीने के रोजे करते हैं, उनमें वे रात के बक्त जितनी जरूरत होती है उतना खा लेते हैं तो भी उन्हें कितनी ही तकलीफ मालूम देती है तब छ: महीने तक लगातार कुछ न खाकर रहना कैसे हो सकता है? उसको नौकर की बात पर विश्वास न हुआ। इसलिए उसने निश्चय करने के लिए अपने दो आदमी भेजे। उनके नाम थे मंगल चौधरी और कमरुखाँ। उन्होंने चंपा के पास जाकर सविनय पूछा:-

“बहिन! इतने दिन तक भूखा कैसे रहा जा सकता है? दिनमें एक बक्त भोजन नहीं मिलने से ही जब आदमी का शरीर काँपने लग जाता है तब इतने दिन तक बिना अन्न के कैसे जीवन टिक सकता है?”

१. छ: महीनों के उपवास से यह नहीं समझना चाहिए कि आजकाल जैन लोग एक दिन उपवास और एक दिन पारणा करके जैसे छःमासी तप कर लेते हैं वैसे ही किया था। चंपा ने लगातार छ: महीने तक उपवास किये थे-निराहार रही थी। इसमें अत्युक्ति का लेश भी नहीं है। कारण-इस तरह छ: महीने तक लगातार तप करने के और भी कई उदाहरण मिलते हैं। उदाहरणार्थ-हम जिस समय की बात करते हैं उसमें कुछ ही काल पहिले यानी विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दिमें श्रीसोमसुंदरसूरि के समय में श्रीशान्तिचंद्रगणि ने भी छ: महीने के लगातार उपवास किये थे।

(देखो-सोमसौभाग्य काव्य (संस्कृत) के १० वें सर्ग का ६१ वा श्लोक)

चंपा ने उत्तर दिया:—“बन्धुओ! यद्यपि ऐसी तपस्या करना मेरी शक्ति के बाहर का कार्य है तथापि देवगुरु की कृपा से यह काम में कर सकती हूँ और आनंदपूर्वक धर्म ध्यानमें दिन गुजार सकती हूँ।”

चंपा के ये परम आस्तिकतापूर्ण वचन सुनकर उनके मनमें जिज्ञासा उत्पन्न हुई। उन्होंने देवगुरु के विषय में पूछा। चंपा ने उत्तर दिया:—“मेरे देव ऋषभादि तीर्थकर हैं। वे समस्त प्रकार के दोषों और जन्म, जरा, मरण से मुक्त हो चुके हैं। और मेरे गुरु हीरविजयसूरि हैं। वे कंचनकामिनी के त्यागी होकर ग्रामुन्नग्राम विचरते हैं और लोगों को कल्याण का उपदेश देते हैं।”

मंगल चौधरी और कमरुखाँ ने वापिस आकर बादशाह से उपर्युक्त सब बाते कहीं। सुनकर बादशाह के मनमें ऐसे महान् प्रतापी सूरि के दर्शन करने की इच्छा उत्पन्न हुई। बादशाह को ख्याल आया कि— ऐतमादखाँ गुजरात में बहुत रहा है। इसलिए वह हीरविजयसूरि से अवश्यमेव परिचित होगा। उसने ऐतमादखाँ को बुलाया और पूछा:—“क्या तुम हीरविजयसूरि को जानते हो?” उसने जवाब दिया:—“हाँ हुजूर, जानता हूँ। वे एक सच्चे फकीर हैं। वे इक्का, गाड़ी, घोड़ा वगेरा किसी भी सवारी में नहीं बैठते हैं। वे हमेशा पैदल ही एक गाँव से दूसरे गाँव जाते हैं। पैसा नहीं रखते। औरतों से बिलकुल दूर रहते हैं। और अपना सारा वक्त खुदा की बंदगी करने और लोगों को धर्मोपदेश देने में गुजारते हैं।”

ऐतमादखाँ की बात से अकबर की इच्छा और भी प्रबल हुई। उसने निश्चय किया कि—ऐसे सच्चे फ़कीर को दरबारमें जरूर बुलाना चाहिए और उनसे धर्मोपदेश सुनना चाहिए।

एक दिन बादशाह ने बहुत बड़ा वरघोड़ा-जुलूस देखा। अनेक

प्रकार के बाजे और हजारों मनुष्योंकी भीड़ उसके दृष्टिगत हुई। उसने टोडरमल से पूछा:—“ये बाजे क्यों बज रहे हैं? इतनी भीड़ क्यों हुई है?” टोडरमल ने जवाब दिया:—“सरकार! जिस औरत ने छः महीने के उपवास शुरू किये थे वे आज पूरे हो गये हैं। उसकी खुशीमें श्रावकों ने यह ‘वरघोडा’ निकाला है।”

बादशाह ने उत्सुकता के साथ फिर प्रश्न किया:—“क्या वह औरत भी वरघोडे में शामिल है?”

टोडरमल ने जवाब दिया:—“हाँ हुजूर, वह भी अच्छे अच्छे कपडे और जेवर पहिनकर खुशी के साथ एक पालखीमें बैठी हुई है। उसके सामने सुपारियों और फूलों से भरे हुए कई थाल रखे हुए हैं।”

दोनों में इस तरह बाते हो रही थी इतनमें ही वरघोडा बादशाही महल के सामने आ पहुँचा। बादशाह ने विवेकी मनुष्यों को भेजकर चंपा को बड़े आदर के साथ अपने महलमें बुलाया और नम्रता से पूछा:—“माता! आपने कितने उपवास किये और कैसे किये?”

चंपा ने उत्तर दिया:—“पृथ्वीनाथ! मैंने छः महीने तक अनाज बिलकुल नहीं खाया। सिर्फ जब कभी बहुत ज्यादा प्यास मालूम होती, तब दिन के वक्त थोड़ा सा गर्म पानी पी लेती थी। इस तरह आज मेरा छःमासी तप पूरा हुआ है।”

बादशाह ने साश्वर्य पूछा:—“तुम इतने उपवास कैसे कर सकी?”

चंपा ने हृदय श्रद्धा के साथ कहा:—“मैं अपने गुरु हीरविजयसूरि के प्रताप से ही इतने उपवास कर सकी हूँ।”

यद्यपि बादशाह मंगल चौधरी और कमरुखाँ की जबानी पहिले ये बातें सुन चुका था तथापि कुदरत के नियमानुसार उसने स्वयमेव

कूरता के साथ उनका वध करवाया। यह शिकार 'कमर्द' के नाम से पहिचानी जाती है। कहा जाता है कि, ऐसा शिकार पहिले कभी किसीने नहीं किया था। हमारे जानने में भी अब तक ऐसी कोई घटना नहीं आई है। दस माइल में एकत्रित किये हुए जानवरों का पाँच दिन तक संहार करनेवाले हृदय उस समय कैसे कूर हुए होंगे? क्या कोई इसका अनुमान कर सकता है? इससे सहज ही में अकबर की कूरता का अंदाजा लगाया जा सकता है। इसीसे कहा जाता है कि, अकबर जैसा दयालु था वैसा ही कूर भी था।

प्रयः राजाओंमें क्षणमें रुष्ट और क्षणमें तुष्ट होने की आदत ज्यादा होती है। उन्हें प्रसन्न होते भी देर नहीं लगती और नाराज होते भी देर नहीं लगती। जिस समय वह किसी पर नाराज होता उस समय वह मनुष्य यह नहीं सोच सकता था कि, अकबर उसकी क्या दुर्दशा करेगा? अपराधी को दंड देने का उसने कोई नियम ही नहीं बनाया था। उसकी इच्छा ही दंड-विधान था। एकबार किसीने किसीके जूते चुराये। अकबर के पास शिकायत आई। अकबर ने उसके दोनों पैर काट देने का हुक्म दिया। अकबर का स्वभाव बहुत क्रोधी था इसलिए कई बार न्याय या अन्याय देखे बिना ही, जो अपराधी बनाकर सामने लाया जाता था उसे हाथी के पैरों तले कुचलने को, कीले जड़कर मारने की, या काटने की और फाँसी की सजा दे देता था। अंग-छेद और कोडे मारने का हुक्म तो अकबर बात बात में दे देता था। अकबर स्वयं ही क्या, अकबर ने जिन जिन सूबेदारों को भिन्न भिन्न प्रान्तों में नियत किया था वे भी अपराधियों को बात की बातमें सूली देने की, हाथी के पैरोंतले कुचलने की, फाँसी की, दाहिना हाथ कटवा देने की और कोडे मारने की सजा दे दिया करते थे।

अकबर जब युद्धमें प्रवृत्त होता तब वह उस समय तक निर्दयतापूर्वक लोगों को कत्ल करता रहता था, जब तक कि उसे

अपनी जीत का निश्चय न हो जाता था। अकबर के जीवन में से अकबर की निर्दयता के ऐसे अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। सन् १५६४ ईस्वीमें 'गोंडवाणा' की न्यायशालिनी रानी दुर्गावती के साथ जब युद्ध हुआ तब उसने युद्धमें बड़ी ही निर्दयता दिखाई थी। राना उदयसिंह के समय में सन् १५६७ ईस्वी के अक्टोबर महीने में उसने 'चित्तौड़' पर चढ़ाई कर दस माइल तक धेरा डाला था। वह भी इसी प्रकार का युद्ध था। कहा जाता है कि, यह चित्तौड़-दुर्ग ४०० फीट ऊँचा था। कहा जाता है कि इस युद्धमें अकबर ने जो निर्दयता दिखाई थी उसके स्मरण से हृदय आज भी काँप उठता है। 'हारा जुआरी दुगना खेले' इस कहावत के अनुसार, जब उसे अपनी जीत का कोई चिह्न नहीं दिखाई दिया तब उसने अपने सिपाहियों को आज्ञा दे दी कि, चित्तौड़ का जो मिले उसीको कत्ल कर दो। और तो और एक कुत्ता मिल जाये तो उसे भी मार दो। चित्तौड़ की चालीस हजार किसान प्रजा पर उसने इस निर्दयता से तलवार चलाई कि, तीस हजार किसान देखते ही देखते खत्म हो गये। उसका क्रोध इतना बढ़ गया कि, उसकी शरणमें आनेवाले बड़े बड़े धनियों को भी वह मरवा देता था। उफ! निर्दीष बालकों और स्त्रियों तक को उसने पकड़वा पकड़वा कर जिन्दा ही आगमें जलवा दिये थे। ऐसे भयंकर पाप के ही कारण आज भी ऐसी कसमें दिलाई जाती है कि, 'तू अमुक कार्य करे तो तुझे चित्तौड़ मारे की हत्या का और गऊ मारे का पाप हो।' कहा जाता है कि, चित्तौड़ के युद्धमें जो राजपूत मारे गये थे उनका अंदाजा लगाने के लिए उनकी जनोईयाँ तोली गई थी। उसका वजन ७४॥ मन हुआ था। आज भी पत्र लिखने में ७४॥ का आंक लिखा जाता है। उसका कारण यही बताया जाता है। मगर ऐतिहासिक घटि से इस बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। कारण-चित्तौड़ की इस लड़ाई के पहिले भी ७४॥ का अंक लिखने का रिवाज प्रचलित था। यह बात सप्रमाण सिद्ध है।

चंपा से फिर भी पूछ लिया। प्रकृति का नियम है कि, किसी आदमी के विषयमें दूसरो के द्वारा कुछ सुना जाता है उससे जो आनंद-जो सहानुभूति उत्पन्न होती है वह उस आदमी से जब साक्षात् भेट होती है तब उसकी जबानी उसका हाल सुनकर कई गुनी ज्यादा बढ़ जाती है। इसीलिए बादशाह ने उससे फिर भी पूछ लिया। चंपा की बातें सुनकर बादशाह को संतोष हुआ। उसने पूछा:—“हीरविजयसूरि इस समय किस जगह है?” चंपा ने उत्तर दिया:—“वे इस वक्त गुजरात प्रांत के गंधार शहरमें हैं।”

चंपा की बातों से बादशाह को बहुत खुशी हुई। उसने पूर्व निश्चयानुसार फिर से निश्चित किया कि-हर तरह से हीरविजयसूरि को यहाँ बुलाऊँगा। ‘हीरविजयसूरि रास’ के लेखक कवि ऋषभदास ने लिखा है कि, अकबर ने उस वक्त प्रसन्न होकर चंपा को एक बहुमूल्य सोने का चूड़ा पहिनाया था और शाही बाजे भेजकर वरघोड़े की शोभा को द्विगुण कर दिया था।

‘जगदगुरु काव्य’ के कर्ता श्रीपद्मसागरगणि अपने काव्यमें यह भी लिखते हैं कि-अकबर ने इस बाई की परीक्षा करने के लिए महीने, डेढ़ महीने तक उसे एक मकानमें रखा था और उसकी संभाल रखने के लिए अपने आदमी नियत किये थे। इस परीक्षामें अकबर को चंपा की सज्जावना पर विश्वास हो गया। उसने उसमें कपट नहीं देखा। फिर उसने यह जानकर कि, हीरविजयसूरि उसके (चंपा के) गुरु हैं, थानसिंह नामके एक जैन गृहस्थ से-जो अकबर के दरबारमें रहता था-उनका पता दर्यापत कर लिया था।

चाहे किसी भी तरह से हो, यह तो निश्चित है कि, अकबर ने हीरविजयसूरि के नाम का परिचय पाकर उनसे मिलना स्थिर किया। उसकी मिलने की इच्छा इतनी उत्कट हुई कि, उसने तत्काल

ही मानुकल्याण और थानसिंह रामजी नामक दो जैन गृहस्थों को और धर्मसी पंचास को बुलाया और उनसे कहा:—“तुम श्रीहीरविजयसूरि को यहाँ आने के लिए एक विनतिपत्र लिखो। मैं भी एक खत लिख देता हूँ।”

पारस्परिक सम्मति से दोनों पत्र लिखे गये। श्रावकोंने सूरिजी को पत्र लिखा और बादशाह ने लिखा उस समय के गुजरात के सूबेदार शहाबखाँ (शहाबुद्दीन अहमदखाँ) को। बादशाह ने पत्रमें साधारण तथा यही नहीं लिख दिया था कि,-हीरविजयसूरि को भेज दो। उसने लिखा था कि-उन्हें हाथी, घोड़े, रथ, प्यादे आदि ठाठ के साथ और इज्जत के साथ यहाँ भेज दो। ये पत्र बादशाहने दो मेवड़ाओं^१ के साथ अहमदाबाद रवाना किये थे। ‘हीरसौभाग्यकाव्य’ में इन मेवड़ाओं के नाम मौदी और कलाम बताये गये हैं। यहाँ एक दूसरी बात पर प्रकाश डाल देना भी उचित होगा।

अकबर सम्राट था उसके पास सब तरह की सामग्रियाँ थी। हाथी थे, घोड़े थे, ऊँट थे, लक्ष्मी का अभाव नहीं था और आदमियों की भी कमी नहीं थी। उस समयमें जितना जल्दी कार्य हो सकता था उतना जल्दी कार्य संपादन करने की सब सामग्रियाँ उसके पास मौजूद थीं।

1. The Mewrahs. They are native of Mewat, and are famous as runners. They bring from great distances with zeal anything that may be required. They are excellent spies, and will perform the most intricate duties. There are likewise one thousand of them, ready to carry out orders.

(The Ain-i-Akbari translated by H. Blochmann M. A.
Vol. I p. 252)

अर्थात्—वे मेवात के रहनेवाले हैं और दौड़नेवाले (हल्कारों) के नाम से प्रसिद्ध हैं। जिस चीज की जरूरत होती है वे बड़े दूर से, उत्साह के साथ (शीघ्र ही) ले आते हैं। वे उत्तम जासूस हैं। बड़े बड़े जटिल कार्य भी वे कर दिया करते हैं। ऐसे एक हजार हैं जो हर समय आज्ञा पालने के लिए तत्पर रहते हैं।

थी। इसलिए यदि वह अपना सोचा कार्य कर लेता था तो इसमें कोई विशेषता नहीं है। यद्यपि इतना था तथापि कहना पड़ता है कि, आज एक दरिद्र जितनी शीघ्रता से कार्य कर सकता है उतनी शीघ्रता से उस समय का सम्राट अकबर नहीं कर सकता था। अकबर के पास ऐसा कोई वैज्ञानिक साधन नहीं था, जैसा आज एक गरीब को भी सरलता से प्राप्त हो सकता है। आगे में बैठे हुए अकबर को यदि गुजरातमें कोई आवश्यक समाचार भेजना पड़ता था तो कमसे कम १०-१२ दिन पहिले तो वह किसी तरह से भी नहीं भेज सकता था। इस समय १०-१२ दिन की बात तो दूर रही मगर १०-१२ घंटों की भी जरूरत नहीं पड़ती है। अब तो १०-१२ मिनिट ही काफी से ज्यादा हो जाते हैं। जिन समाचारों को भेजने के लिए उस समय सैकड़ों रुपये खर्चने पड़ते थे वे समाचार अब केवल बारह आने में पहुँचा दिये जाते हैं। अभी जमाने को आगे बढ़ने दो, भारतमें साधनों के बाहुल्य होने दो, फिर देखना कि, ये ही समाचार सेंकड़ोंमें पहुँचने लगेंगे।

पाठक! कहो अकबर सम्राट था, सम्राट ही क्यों उस समय चक्रवर्ती के समान था तो भी आज से साधन उसके भाग्यमें थे? नहीं, नहीं थे, बिलकुल नहीं थे। कमसे कम कहें तो भी आठ-दस दिन तक रस्ते की धूल फाक फाक कर ऊँट और घोड़ों के साथ ही मनुष्यों की भी पूरी गति बन जाती तब कहीं जाकर एक समाचार आगे से गुजरातमें पहुँचता। अकबर की प्रबल इच्छा थी कि, उसका आमंत्रण तत्काल ही हीरविजयसूरि के पास पहुँच जाय, मगर उसकी इच्छा से क्या हो सकता था? मनुष्य जाति से जितना हो सकता है उतना ही तो वह कर सकती है। तो भी अकबर और थानसिंह आदि श्रावकों के पत्र ले, लंबी लंबी मंजिले तै कर मेवडों ने जितनी शीघ्रता उनसे हो सकती थी उतनी शीघ्रता से अहमदाबादमें शहाबखाँ के पास दोनों पत्र पहुँचाये।

शहाबखाँ ने सम्राट का पत्र हाथमें लेकर भक्ति पूर्वक सिर पर ढाया और पत्रको पढ़ने से पहिले सम्राट की, उसके तीन पुत्रों की-शेखूजी, पहाड़ी और दानियाल की-और सारे शाही कबीले की सुख शान्ति का हाल दर्यापत्त कर लिया फिर उसने बादशाह का सुनहरी फर्मान बड़े ध्यान के साथ पढ़ा। उसमें लिखा था,—

“हाथी, घोड़े, पालखी और दूसरी शाही चीजे साथ देकर शान के साथ, सम्मानपूर्वक श्रीहीरविजयसूरि को यहाँ भेज दो।”

शहाबखाँ स्वयं बादशाह के हाथ का लिखा हुआ यह पत्र देखकर निस्तब्ध रह गया। उसे अपना पूर्वकृत स्मरण हो आया-बादशाहने उन्हीं हीरविजयसूरि को आमंत्रण दिया है कि, जिनको मैने थोड़े ही दिन पहिले सताया था, जिन पर मैने अत्याचार किया था, जो मेरे सिपाहीयों के डरके मारे नंगे बदन अपनी जान लेकर भागे थे। इन विचारोंने उसके हृदय को हिला दिया। महात्मा को कष्ट दिया इसके लिए उसके हृदयमें असाधारण पश्चात्ताप होने लगा। मगर अब क्या हो सकता था। उसने ‘गतं न शोचामि कृतं न मन्ये’ सूत्र का अवलंबन कर अपने मालिक के हुक्म को जल्दी बजा लाने की तरफ मन लगाया। उसने अहमदाबाद के प्रसिद्ध प्रसिद्ध नेता जैन गृहस्थों को बुलाया। सब आये। उन्हें बादशाह का पत्र दिया। अपना पत्र भी पढ़कर सुनाया और कहा:—

“शाहन्शाह जब अपनी इज्जत के साथ श्रीहीरविजयसूरि को बुला रहा है तब उन्हें जरूर जाना चाहिए। तुम्हें भी खास तरह से उन्हें आगे जाने के लिए अर्ज करना चाहिए। यह ऐसी इज्जत है कि, जैसी आजतक बादशाह की तरफ से किसीको भी नहीं मिली है। सूरीश्वरजी के वहाँ जाने से तुम्हारे धर्म का गौरव बढ़ेगा और तुम्हारे यशमें भी अभिवृद्धि होगी। इतना ही नहीं हीरविजयसूरि की शिष्य

परंपरा के लिए भी उनका यह प्राथमिक प्रवेश बहुत ही लाभदायक होगा। इसलिए किसी तरह की 'हाँ' 'ना' किये बिना हीरविजयसूरि को बादशाह के पास जाने के लिए आग्रह के साथ विनति करो। मुझे आशा है कि, वे जाकर बादशाह पर अपना प्रभाव डालेंगे और बादशाह से अच्छे अच्छे काम करवायेंगे।"

खान ने साथ ही यह भी कहाकि—“सूरिजी को रस्ते में हाथी, घोड़े, पालखी, धन-दौलत वर्गे जो कुछ उनके आराम के लिए चाहिए, मैं दूँगा! बादशाहने मुझे आज्ञा दी है। तुम्हें इसके लिए किसी तरह की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।”

यद्यपि बादशाह का पत्र पढ़कर पहिले अहमदाबाद के श्रावकों को प्रसन्नता होने के बजाय कुछ चिन्ता हुई थी, तथापि शहाबखाँ की उत्तेजनादायक बात सुनकर पीछे से चिन्तामें कमी हो गई। उनके चहेरों पर कुछ प्रसन्नता की रेखाएँ भी फूट उठी। अन्तमें वे शहाबखाँ को यह कह कर वहाँ से चले गये कि-सूरिजी महाराज इस समय गंधार में हैं। उनको हम विनति करके अभी तो यहाँ ले आते हैं।

श्रावकोंने एकत्रित होकर बच्छराज पारेख, भूला शेठ, नाना वीपू शेठ और कुँवरजी जौहरी आदि को भेजा। वे अपनी बैल गाड़ियाँ जोड़ जोड़कर सीधे गंधार को गये। अहमदाबाद के संघने खंभात के श्रीसंघ को भी सूचना दी। वहाँ के संघने भी अपनी तरफ से उद्यकरण संघवी, वजिया पारेख, राजिया पारेख और राजा श्रीमल ओसवाल आदि को सीधे गंधार भेजा।

यद्यपि अहमदाबाद और खंभात के नेताओं के जाने से सूरिजी को आनंद हुआ, तथापि उनके हृदयमें यह शंका उपस्थित हुए बगेर न रही कि ये लोग सहसा क्यों आये हैं? दोनों नगरों के संघोंने सूरिजी को और मुनिमंडल को बंदना की। सूरिजी का व्याख्यान सुना।

सूरिजीने आहार-पानी किया। श्रावक भी सेवा पूजा और भोजनादि कार्यों से निवृत हुए। तत्पश्चात् खंभात के, अहमदाबाद के और गंधार के मुख्य मुख्य श्रावक तथा सूरीश्वरजी, विमलहर्ष उपाध्याय और अन्यान्य प्रधान प्रधान मुनि विचार करने के लिए एकान्त स्थानमें बैठे।

उस समय अहमदाबाद के संघ ने अकबर बादशाह का पत्र-जो शहाबखाँ के नाम आया था—और आगरे के जैन श्रीसंघ का पत्र, सूरिजीने अपने नाम का विनंतीपत्र जो आगरे के संघ का था पढ़ा। तत्पश्चात् दोनों पत्र इसी मंडलमें बाँचे गये। अहमदाबाद के संघने शहाबखाँ की कही हुई बाते भी वहाँ कहीं। ‘जाना या नहीं’ इस बात की चर्चा तो अभी प्रारंभ न हुई मगर बादशाह ने सहसा सूरिजी महाराज को कैसे आमंत्रण दिया, इसी बात की थोड़ी देर आश्वर्यकारक बात की तरह चर्चा होती रही। फिर मुख्य चर्चा प्रारंभ हुई। अहमदाबाद का श्रीसंघ, जब जो कुछ कहना था, कह चुका तब प्रत्येक अपनी अपनी राय प्रकट करने लगा।

किसी प्रसंग पर सब लोगों की सम्मति एक ही हो यह बात न कभी हुई है, न कभी होती है और न कभी होवेगी। हरेक मौके पर विचारों की विभिन्नता रहती ही है। अमुक विषयमें किसीके विचार कैसे होते हैं और किसीके कैसे। जिस समय की हम बात लिख रहे हैं वह समय भी इस अटल नियम से नहीं बचा था। उस समय भी जैसे कई उदार विचारवाले थे वैसे ही संकुचित विचारवाले भी थे। इसीलिए ‘बादशाह का आमंत्रण स्वीकार करके सूरिजी को जाना चाहिए या नहीं?’ इस विषयमें बहुत से मतभेद हो गये थे। कइयोंने कहा:—“सूरिजी महाराज किस लिए वहाँ जाये? बादशाह को यदि सूरिजी महाराज का धर्मोपदेश सुनना होगा या महाराज के दर्शन करने होंगे तो वह आप ही यहाँ आ जायगा।” कइयोंने कहा:—“सूरिजी महाराज को हम लोग क्या वहाँ भेज सकते हैं? वह तो महा म्लेच्छ है, न

जाने क्या करे? वहाँ जाकर लेना क्या है?" किसीने कहा:—"अकबर ऐसा वैसा आदमी नहीं है। लोगों को जब उसके नाम से ही दस्त लग जाते हैं तब उसके पास तो जा ही कौन सकता है?" किसीने कहा:—"वह तो खासा राक्षस का अवतार है। मनुष्यों को मार डालना तो उसके लिए 'एक एकन एक' के समान है। ऐसे दुष्ट बादशाह के पास जाने से मतलब?" इस तरह विवाद करते हुए कई उसकी ऋद्धि समृद्धि का हिसाब करने लगे और कई उसकी लड़ाइयों की गिनती करने बैठे। सूरिजी चुपचाप मौन धारण कर इनकी बातें सुन रहे थे। कइयोंने यह भी कहा कि—"यद्यपि बादशाह बहुत क्रूर है तथापि उसमें यह गुण बड़ा भारी है कि, वह गुणियों का आदर करता है। वह यदि किसीमें महत्व का गुण देखता है तो उस पर प्रसन्न हो जाता है। इसलिए वह तो सूरिजी के समान महात्मा को देखते ही लट्टू हो जायगा।" कइयोंने कहा:—"हमें ऐसे संकुचित विचार नहीं रखने चाहिए, जब राजा उन्हें ऐसे सम्मान के साथ बुला रहा है तो महाराज को अवश्य जाना ही चाहिए। सूरीश्वर महाराज के पधारने से शासन की बहुत प्रभावना होगी।" किसीने कहा:—"डरने का कोई सबब नहीं है। अकबर के सोलह सौ तो स्त्रियाँ हैं। वह तो उन्हींमें अपना दिन बिताता है। वह स्त्रि-सहवास और एशोइ शरत से छुटी पायेगा तब तो सूरिजी महाराज से मिलेगा न?" इतने में एक बोल उठा:—"जब बादशाह मिलेगा ही नहीं तो फिर जाने की जरूरत ही क्या है?"

इस तरह श्रावकों के आपसमें जो विवाद हुआ उसको सूरीश्वरजी ने शान्ति के साथ सुना और फिर शासनसेवा की भावनापूर्ण हृदय के साथ गंभीर स्वरमें कहा:—

"महानुभावो! मैंने अब तक आप सबके विचार सुने। जहाँ तक मैं समझता हूँ अपने विचार प्रकट करने में किसीका आशय खराब नहीं है। सबने लाभ के ध्येय को सामने रखकर ही अपने विचार

प्रकट किये हैं। अब मैं अपना विचार प्रकट करता हूँ। इस बात के विस्तृत विवेचन की तो इस समय मैं कोई आवश्यकता नहीं देखता कि, अपने पूर्वाचार्यों ने मान-अपमान की कुछ भी परवाह न कर राज दरबारमें अपना पैर जमाया था और राजाओं को प्रतिबोध दिया था। इतना ही क्यों, उनसे शासनहित के बड़े बड़े कार्य भी करवाये थे। इस बात को हरेक जानता है कि, आर्य-महागिरिने सम्मति राजा को, बप्पभट्टीने आमराज को, सिद्धसेन दिवाकर ने विक्रमादित्य को और कलिकाल सर्वज्ञ प्रभु श्री हेमचंद्राचार्य ने कुमारपाल राजा को—इस तरह अनेक पूर्वाचार्योंने अनेक राजाओं को-प्रतिबोध दिया था। उसीका परिणाम है कि, इस समय भी हम जैन धर्म की जाहो-जलाली देखते हैं। भाइयो! यद्यपि मुझमें उन महान आचार्यों के समान शक्ति नहीं हैं; मैं तो केवल उन पूज्य पुरुषों की पद-धूलिके समान हूँ तथापि उन पूज्य पुरुषों के पुण्य-प्रताप से 'यावद् बुद्धिबलोदयम्' इस नियम के अनुसार शासनसेवा के लिए जितना हो सके उतना प्रयत्न करने को मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। अपने पूज्य पुरुषों को तो राज दरबारमें प्रवेश करते बहुत सी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी थीं, परन्तु हमें सम्राट स्वयमेव बुला रहे हैं। इसलिए उसके आमंत्रण को अस्वीकार करना मुझे अनुचित जान पड़ता है। तुम इस बात को भली प्रकार समझते हो कि, हजारों बल्कि लाखों मनुष्यों को उपदेश देनेमें जो लाभ है उसकी अपेक्षा कई गुना लाभ एक राजा को-सम्राट को उपदेश देने में है। कारण-गुरु की कृपा से सम्राट के हृदयमें यदि एक बात भी बैठ जाती है तो हजारों ही नहीं बल्कि लाखों मनुष्य उसका अनुसरण करने लग जाते हैं। यह ख्याल भी ठीक नहीं है कि—"जिसकी गर्ज होगी वह हमारे यहाँ आयेगा।" यह विचार शासन के लिए हितकर नहीं है। संसारमें ऐसे लोग बहुत ही कम हैं जो अपने आप धर्म करते हैं—उत्तमोत्तम कार्य करते हैं। धर्म इस समय लँगड़ा

है। लोगों को समझा समझाकर—युक्तियों से धर्मसाधन की उपयोगिता उनके हृदयोंमें जमा जमाकर यदि उनसे धर्मकार्य कराये जाते हैं तो वे करते हैं। इसलिए हमें शासनसेवा की भावना को सामने रखकर प्रत्येक कार्य करना चाहिए। शासनसेवा के लिए हमें जहाँ जाना पड़े वहीं निःसंकोच होकर जाना चाहिए। परमात्मा महावीर के अकाट्य सिद्धान्तों का घर घर जाकर प्रचार किया जायगा तभी वास्तविक शासनसेवा होगी। 'सवी जीव करूँ शासनरसी' (संसार के समस्त जीवों को शासन के रसिक बनाऊँ) इस भावना का मूल उद्देश्य क्या है? हर तरह से मनुष्यों को धर्म का-अहिंसा धर्म का अनुरागी बनाने का प्रयत्न करना। इसलिए तुम लोग अन्यान्य प्रकार के विचार छोड़कर मुझे अकबर के पास जाने की सम्मति दो। यही मेरी इच्छा है।"

इस गंभीर उपदेश का प्रत्येक पर बिजली सा असर हुआ। पहिली बार अकबर के पास जानेमें जो हानि देखते थे वे ही अब अकबर के पास जानेमें लाभ देखने लगे। 'सूरिजी महाराज के उपदेश से बादशाह मांसाहार छोड़ देगा तो कितना अच्छा होगा?' सूरिजी महाराज के उपदेश से बादशाह पशुवध बंद कर देगा तो कितना उत्तम होगा? 'सूरिजी महाराज के उपदेश से यदि बादशाह जैन हो जायगा तो कितनी शासन-प्रभावना होगी?' इस तरह कल्पनादेवी के घोड़े प्रत्येक के हृदयमें दोड़ने लगे। सबने प्रसन्नता के साथ कहा:—

"महाराज! आप आनंदपूर्वक जाइए। हम सभी राजी हैं। आप महान् प्रतापी हैं, पुण्यशाली हैं। आपके तप-तेज से बादशाह धर्म प्रेमी होगा। इससे शासनोन्नति के अनेक कार्य होंगे। हम आशा करते हैं कि, आप भी प्रभु श्रीहेमचंद्राचार्य के समान ही अकबर पर प्रभाव डालकर जीवदया की विजयपताका फर्रा देंगे। शासनदेव हमारी इस आशा को अवश्यमेव सफल करेंगे। हमारी आत्मा इस बात की साक्षी दे रही है।"

तत्पश्चात् सूरिजी महाराज के विहार का निश्चय होने पर एकत्रित संघने हर्षविश से बीर परमात्मा और हीरविजयसूरि के जयघोष से उपाश्रय को गुँजा दिया।

आज मार्गशीर्ष कृष्णा ७ का दिन है। गंधार के उपाश्रय के बाहिर हजारों आदमियों की भीड़ हो रही है। साधु-मुनिराज कमर कसने की तैयारी कर रहे हैं। श्रावक हर्ष-शोकमिश्रित स्थितिमें बैठे हुए सूरिजी महाराज से उपदेश सुन रहे हैं। दूसरी तरफ ख्रियों का समूह है। उनमें कई गुरुविरह से आँसू बहा रही है। कई अकबर बादशाह को उपदेश देने जाने की बात कह रही हैं। कई यह सोचकर निस्तब्ध भाव से महाराज की तरफ देख रही है कि, अब कब उनके दर्शन होंगे? उनमें कई ख्रियाँ-जो गायनमें होशियार हैं-गुरु विरह की गुहुलियाँ गा रही हैं। मुनिराज कमर बाँधकर तैयार हुए। सूरिजी भी तर्पनी और डंडा लेकर तैयार हो गये। हजारों ख्री पुरुष सूरिजी की मुखमुद्रा को देखते ही रहे। आगे आगे सूरिजी चले। पीछे पीछे मुनिराजों का समुदाय अपनी अपनी उपधियाँ और पात्रे कंधों पर रखकर चलने लगे। उनके पीछे श्रावक लोग थे और सबसे पीछे ख्रियों का समुदाय था। गुरुजी से होनेवाले लंबे बिछोहे का विचार जैसे लोगों के हृदयमें उठने लगा वैसे ही वैसे उनके हृदय भर आने लगे और उनके बहुत रोकने पर भी-बहुत धैर्य धारण करने पर भी आँखों से आँसू गिर बिना न रहे। गुरुने हजारों लोगों की इस उदासीनता की तरफ ध्यान नहीं दिया। वे समभावमें लीन हो, पंच परमेष्ठी का ध्यान करते हुए आगे की ओर ही बढ़ते गये। नगर से बाहिर थोड़ी दूर आ सूरिजी ने तमाम संघ को वैराग्यमय उपदेश दिया। उन्होंने कहा:—

"धर्मस्नेह यह संसारमें अनोखा स्नेह है। गुरु और शिष्य का जो स्नेह है वह धर्म का स्नेह है। तुम्हारा और हमारा धर्म-स्नेह है

और उसी स्नेह के कारण इस समय तुम्हारे मुखकमल मुझा गये हैं। मगर तुम यह जानते हो कि, परमात्माने हमें ऐसा मार्ग बताया है कि, जिस मार्ग पर चले बिना हमारा चारित्र किसी तरह भी सुरक्षित नहीं रह सकता है। चौमासे के अंदर चार महीने तक ही हम एक स्थान पर रहते हैं। मगर इस थोड़ी अवधिमें भी तुम्हें इतना स्नेह हो जाता है कि, मुनिराज जब विहार करते हैं, तब तुम्हें अत्यंत दुःख होता है। यद्यपि यह धर्मस्नेह लाभदायी है, भव्य पुरुष इससे अपना उद्धार कर सकते हैं, तथापि यह स्नेह भी आखिर एक प्रकार का मोह ही है। किसी समय यह भी बंधन का कारण हो जाता है। इसलिए इस स्नेह से भी हमें मुक्त ही रहना चाहिए। महानुभावो! तुम जानते हो कि, मुनिराजों के धर्मानुसार यह समय हमारे विहार का ही है। उसमें भी एक विशेषता है। मुझे अपने देश के सप्राट अकबर बादशाह का आमंत्रण मिला है। इस आमंत्रण को स्वीकारने से शासन की प्रभावना होगी इसीलिए मैं जा रहा हूँ। तुमने अब तक बहुत भक्ति की है। वह याद आया करेगी। अब भी मैं आप लोगों से-चतुर्विध संघ से एक सहायता चाहता हूँ। वह यह है— आप लोग शासनदेवों से प्रार्थना करे कि वे मुझे वीर प्रभु के शासन की सेवा का सामर्थ्य दे और मुझे निर्विघ्नता पूर्वक फतेहपुर-सीकरी पहुँचा कर मेरे कार्यमें सहायता करें। अब मैं आप लोगों को केवल एक ही बात कहना चाहता हूँ। कि, सभी धर्मध्यान करते रहना, झगड़े-टंटोंसे जुदा रहना, विषय-वासना से निवृत्त होना, और इस मनुष्य जन्म की सार्थकता करने के लिए दान, शील, तप और भावरूपी धर्म की आराधना करने में दत्तचित्त रहना, ॐ शान्तिः।''

'ॐ शान्तिः' के उच्चारण की समाप्ति के साथ ही सूरजी ने किसीकी और दृष्टिपात न कर आगे कदम बढ़ाया। श्रावक और श्राविकाएँ अपनी अपनी भावनाओं के अनुसार पीछे पीछे चले। थोड़ी

दूर जाकर सब खड़े रहे। सूरजी आगे चले। जहाँ तक वे दिखते रहे वहाँ तक लोग टकटकी लगाकर उन्हें देखते रहे। जब वे आंखों की ओट हो गये तब लोग उदासमुख वापिस अपने घर चले गये।

सूरजी ने गंधार से रवाना होकर पहिला मुकाम चाँचोल में किया था। फिर वहाँ से रवाना होकर जंबूसर होते हुए धूआरण के पासकी मही नदी को पार कर बटादरे पहुँचे। यहाँ सूरजी को बंदना करने के लिए खंभात का संघ आया था।

सूरजी को उस गाँवमें एक आश्वर्योत्पादक बात मालूम हुई। रातमें जब वे सो रहे थे। कुछ नींद थी कुछ जागृत अवस्था थी। उस समय उन्होंने देखा कि,—एक दिव्याकृतिवाली स्त्री उनके आगे खड़ी हुई है। उसके हाथमें मोती और कुंकुम है। उसने सूरजी को मोतियों से बधाये और कहा:—“पूर्व दिशामें रहकर लगभग सारे भारत पर राज्य करनेवाला अकबर बादशाह आपको बहुत चाहता है। इसलिए आप निःशंक भाव से अकबर के पास जावें और वीरशासन की शोभा को बढ़ावें। आपके वहाँ जाने से द्वितीया के चंद्र की भाँति आपकी कीर्ति बढ़ेगी।”

इतना कह कर वह दिव्याकृतिवाली स्त्री अन्तर्धान हो गई। वह कहाँ लुप्त हो गई इसका सूरजी को कुछ भी पता नहीं चला। इससे सूरजी उससे विशेष बातें न पूछ सके। मगर इतना जरूर हुआ कि उक्त शब्द-ध्वनि से उनके हृदयमें अपूर्व उत्साह का संचार हो गया।

सूरजी वहाँ से आगे बढ़े। सोजित्रा, मातर और बारेजा आदि गाँवोंमें होते हुए अहमदाबाद पहुँचे। अहमदाबाद के श्रावकों ने बड़ी धूमधाम के साथ सूरजी का नगर-प्रवेशोत्सव किया, वहाँ के सूबेदार शहाबखाँ ने पहिले सूरजी को कष्ट दिया था इसलिये उनसे मिलनेमें उसे बड़ी शर्म मालूम देती थी मगर क्या करता? बादशाह का हुक्म

था। वह मनमार कर अपने रिसाले सहित सूरिजी की अगवानी के लिए गया। उसने सूरिजी के चरणोंमें नमस्कार किया। सूरिजी के नगरमें आ जाने बाद उसने एकबार उसकी दर्बारमें पधरामणी की; उनके आगे हीरा, मोती आदि जवाहरात रखे और कहा:—

“महाराज! ये चीजें अपने साथ ही लेते जाइए। आपको मार्गमें किसी तरह का कष्ट न हो इसके लिए मैं हाथी, घोड़े, रथ, पालकी आदि का प्रबंध कर देता हूँ। आप तत्काल उन्हें लेकर दिल्लीश्वर के पास पहुँच जाइए। इन सबके साथ रहने से आपको मार्गमें किसी तरह के कष्ट का मुकाबिला नहीं करना पड़ेगा। मुसाफिर बहुत लंबी है। आपकी अवस्था बहुत ढल चुकी है। इसलिए इन सब साधनोंका आपके साथ रहना जरूरी है।”

“महाराज! आपसे मैं एक बात की क्षमा माँगता हूँ। वह यह है कि, मैंने आपके समान महात्मा पुरुष को तकलीफ़ पहुँचाई थी। मैं ऐसा तुच्छ हूँ कि आपके व्यक्तित्व को जाने बिना ही नौकरों के कहने से आपको कष्ट दिया। आप महात्मा हैं। मेरे इस अक्षम्य अपराधको क्षमा कीजिए और मुझे ऐसा आशीर्वाद दीजिए कि, जिससे मेरे समान दुष्ट मनुष्य भी उस महान पाप से बच जाय।”

सूरिजी ने सहास्य बदन उत्तर दिया:—“खाँसाहिब! हमारा धर्म भिन्न ही प्रकार का है। हमारे लिए परमात्मा महावीर की आज्ञा है कि, कोई चाहे कितना ही कष्ट तुम्हें दे तो भी तुम तो उस पर क्षमाभाव ही रखें। यद्यपि हमारे लिए यह आज्ञा है तथापि संसंकोच मुझे यह कहना पड़ता है कि, मैं अभी तक उस स्थितिमें नहीं पहुँचा हूँ। जिस दिन मेरी ऐसी अवस्था हो जायगी उस दिन मैं स्वयं ही अपने आत्माको धन्य मानूँगा। इतना होने पर भी यह बात स्पष्टतया कह देना चाहता हूँ कि, मुझे आप पर लेशमात्र भी द्वेष नहीं है। अब

आपको अपने मनमें गत घटना के लिए किञ्चिन्मात्र भी दुःख न करना चाहिए। मैं मानता हूँ कि, संसारमें मेरा कोई भी व्यक्ति भला या बुरा नहीं कर सकता है। मुझे जो कुछ भले बुरे का या सुख दुःखका अनुभव होता है उसका कारण मेरे कर्म ही है। दूसरा कोई नहीं है। संसारमें हम जैसे जैसे कर्म करते हैं वैसे ही वैसे फल हमें मिलते हैं। इसलिए आप उसके लिए लेशमात्र भी विचार न करें।”

उसके बाद सूरिजी ने अपने आचार से संबंध रखनेवाली बातें कहीं। और शहाबखाँ को समझाया कि,—“हम लोग कंचन और कामिनी से सदा दूर रहते हैं। हीरा, मोती आदि जवाहरात और पैसा टका हम नहीं रख सकते हैं। हमारा धर्म है कि हम गाँव गाँव पैदल ही फिरें और जन समाज को अहिंसामय धर्म का उपदेश दे। इसलिए आप मेरे सुभीते के लिए घोड़े, हाथी आदि मेरे साथ भेजना चाहते हैं या मुझे देना चाहते हैं, उन्हें मैं स्वीकार नहीं कर सकता। कारण ये मेरे लिए भूषण न होकर दूषण हैं। इसलिए मैं पैदल ही चलकर, जैसे बनेगा वैसे, शीघ्र ही सप्राट के पास पहुँचने का प्रयत्न करूँगा।”

सूरीश्वरजी के वक्तव्य से शहाबखाँ के हृदय पर गहरा प्रभाव डाला। जैनसाधुओं की त्यागवृत्ति और सच्ची फकीरी पर वह मुग्ध हो गया। उसने उपर्युक्त बातों को लक्ष में रखते हुए बादशाह को एक पत्र लिखा। उसमें उसने यह भी लिखा कि—

“श्री हीरविजयसूरि गंधार से पैदल चल कर यहाँ आये हैं। उनको आपकी आज्ञा के अनुसार मैं सब चीजें देने लगा, मगर उन्होंने अपने धर्म के विरुद्ध होने से कोई चीज स्वीकार नहीं की। सरकार! मैं आपसे क्या निवेदन करूँ? हीरविजयसूरि एक ऐसे फकीर हैं कि, इनकी जितनी तारीफ की जाय उतनी ही थोड़ी है। वे पैसे को तो छू भी नहीं सकते। पैदल चलते हैं। किसी भी सवारी पर नहीं

चढ़ते और स्त्रियों के संसर्ग से सर्वथा दूर रहते हैं । इनके आचार ऐसे कठिन हैं कि, लिखने से एक बार उन पर विश्वास नहीं होता । इनसे जब आप मिलेंगे तभी आपको यकीन होगा । ”

अहमदाबाद में थोड़े दिन रह कर सूरिजी आगे चले । मौँदी और कमाल नाम के दो मेवड़े-जो अकबर के पास से आमंत्रण लेकर आये थे और अब तक अहमदाबाद ही में ठहरे हुए थे-भी सूरिजी के साथ रवाना हुए । अहमदाबाद से चल कर सूरिजी उसमानपुर, सोहला, हाजीपुर, बोरीसाना, कड़ी, वीसनगर, और महसाना आदि होते हुए पाटन पहुँचे । यहाँ सात दिन तक रहे । इसीके बीच में उन्होंने कई प्रतिष्ठाएँ भी कराई । यहाँसे श्री विमलहर्ष उपाध्यायने पैंतीस साधुओं सहित पहिले विहार किया । सूरिजी पीछे से रवाना हुए । सूरिजी वडली में अपने गुरु श्री विजयदानसूरि के स्तूप (पादुका) की वंदना कर सिद्धपुर गये । श्री विजयसेनसूरि यहाँ से वापिस पाटन गये । कारण-संघ की-साधुओं की सँभाल रखने के लिए उनका गुजरात ही में रहना स्थिर हुआ था । सिद्धपुर से आबूकी यात्रा के लिए विहार करते हुए सूरिजी सरोत्तर (सरोत्रा) हो कर रोह पधारे यहाँ सहस्रार्जुन नामक भीलों का सर्दार रहता था । उसने और उसकी आठ स्त्रियोंने सूरिजी की साधुता से प्रसन्न होकर इनका उपदेश सुना । उपदेश सुन कर उसने किसी भी निरपराध जीव को नहीं मारने का नियम ग्रहण किया । फिर वहाँ से सूरिजी आबू की यात्रा के लिए आबू गये । आबू के मंदिरों की कारीगीरी देखकर आपको बड़ी भारी प्रसन्नता हुई । वहाँ से सीरोही पधारे । सीरोही के राजा सुरत्राण (देवडा सुल्तान) ने सूरिजी का अच्छा सत्कार किया । इतना ही नहीं उसने सूरिजी के उपदेश से चार बातों का-शिकार, मांसहार, मदिरापान और परस्त्री सेवन का त्याग कर दिया । सूरिजी वहाँ से सादड़ी होकर राणकपुर की यात्रा के लिए गये । वहाँ के

आमंत्रण

मंदिर की विशालता को- जो भूमंडल पर अद्वितीयता का उपभोग कर रही है-देख कर सूरिजीको बहुत आनंद हुआ । वहाँ से वे वापिस सादड़ी आये । सूरिजी के दर्शनार्थ वराड से चल कर आये हुए श्री कल्याणविजयजी उपाध्याय भी सूरिजी को वहाँ मिले । वे आउआ तक साथ रह कर वापिस लौटे । आउआ के स्वामी वणिक गृहस्थ ताल्हान सूरिजीके आगमन की खुशी में उत्सव किया । और पिरोजिका नाम का सिक्का भेटस्वरूप हरेक मनुष्य को दिया । सूरिजी वहाँ से मेड़ता गये । मेड़ता में दो दिन तक रहे । यहाँ के राजा सादिम सुल्तान ने भी आपकी अच्छी खातिरदारी की । समस्त भारत पर जिसका एकछत्र साम्राज्य था उस अकबरने ही जब सूरिजीको बड़े सत्कार के साथ बुलाया था तो फिर ऐसे महत्वशाली पुरुष को छोटे छोटे राजाओं ने आदर दिया इसमें तो आश्वर्यकी कोई बात ही नहीं है । हाँ सूरिजी के उपदेश में जो विद्युत्-शक्ति थी वह वास्तव में आश्वर्योत्पादक ही थी । सबसे पहिले तो उनकी शान्त और गंभीर मुखमुद्रा ही सबको अपनी तरफ खींच लेती थी । फिर शुद्ध चारित्र के रंग से रँगा हुआ उनका उपदेश ऐसा होता था कि, वह कैसे ही कठोर हृदयी पर भी अपना असर डाले बिना नहीं रहता था ।

मेड़ता से सूरिजी विहार कर ‘फलौधि पार्श्वनाथ’ की यात्रा के लिए फलौधी भी पधारे और वहाँ से विहार कर साँगानेरे पधारे ।

श्री विमलहर्ष उपाध्याय उसी समय-जब कि, सूरिजी साँगानेरे पधारे-फतेहपुर-सीकरी पहुँचे । उनके साथ श्री सिंहविमल आदि विद्वान् मुनिरल भी थे । उन्होंने उपाश्रय में मुकाम करने के बाद तत्काल ही थानसिंह, मानुकल्याण और अमीपाल आदि नेताओं से कहा- “चलो बादशाह से मिलेंगे । ”

उपाध्यायजी की यह उत्सुकता पाठकों को जरा खटकेगी । उपाश्रय में आकर अपने उपकरण उतारते ही, तत्काल ही अकबर के

समान बादशाह से मिलने के लिए तत्पर होना, कुछ असभ्यतापूर्ण नहीं तो भी अनुचित जरूर मालूम होगा । उपाध्यायजी की बात सुन कर थानसिंह और मानुकल्याणने कहा- “बादशाह विचित्र प्रकृति का मनुष्य है । सहसा उसके सामने जा खड़ा होना हमारे लिए अनुचित है । इस लिए अभी सब्र कीजिए । हम जा कर शेख अबुलफजल से मिलते हैं । वह जैसी सलाह देगा वैसा ही किया जायगा । ”

थानसिंह, मानुकल्याण और अमीपाल आदि कई नेता श्रावक अबुलफजल के पास गये और बोले-“श्री हीरविजयसूरि के कई शिष्य यहाँ आ पहुँचे हैं । वे बादशाह से मिलना चाहते हैं । ”

अबुलफजल ने प्रसन्नतापूर्वक उत्तर दिया-“ अच्छी बात है । उन्हें ले आओ । हम उन्हें बादशाह के पास ले जायेंगे । ”

यहाँ इतना कह देना आवश्यक है कि, सूरीश्वरजी के आने से पहिले ही, विमलहर्ष उपाध्याय बहुत जल्दी बादशाह से मिलना चाहते थे, इसका खास सबब यह था कि,-बादशाह के संबंध में नाना प्रकार की अफवाहें सुनी जाती थीं। कई उसको बिलकुल असम्य बताते थे,, कई उसको क्रोधी बताते थे, कई उसको प्रपंची ठहराते थे और कई धर्माभिलाषी भी कहते थे । इससे उपाध्यायजी आदि पहिले आये हुए मुनियोंने सोचा कि,-हमें पहिले ही बादशाह से मिलना चाहिए और देखना चाहिए कि, वह कैसी प्रकृति का मनुष्य है । यदि वह असम्य होगा और हमारा अपमान करेगा तो कोई दुःख की बात नहीं है; परन्तु यदि वह सूरीजी महाराज का अपमान करेगा तो वह हमारे लिए महान् असह्य दुःखदायी होगा । शायद हमें किसी विपत्ति में फँस जाना पड़े तो भी गुरुभक्ति या शासन-सेवा के लिए हमारे लिए तो वह श्रेयस्कर ही होगा । उससे सूरीजी महाराज को सचेत होने का समय मिलेगा। इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर उन्होंने बादशाह से पहिले मिलना उचित समझा था ।

श्रावक बुलाने आये । उपाध्यायजी सिंहविमलपन्न्यास, धर्मसी ऋषि और गुणसागर को साथ लेकर पहिले अबुलफजल के यहाँ गये । अबुलफजलके पास पहुँच कर उपाध्यायजीने कहा-“हम फ़कीर हैं, भिक्षावृत्ति से जीवन-निर्वाह करते हैं । एक कौड़ी भी अपने पास नहीं रखते हैं । हमारे पास गाँव, खेत, कूए, घरबार आदि कुछ भी नहीं हैं । पैदल ही चलकर गाँव गाँव फिरते हैं । मंत्र, तंत्रादि भी हम नहीं करते । फिर बादशाह ने किस हेतु से हमें (हमारे गुरु श्रीहीरविजयसूरिको बुलाया है ?”

अबुलफजल ने कहा-“बाहशाह को आपसे दूसरा कोई काम नहीं है । वह केवल धर्म सुनना चाहता है । ”

उसके बाद अबुलफजल उनचारों महात्माओंको अकवरके पास ले गया और उनका परिचय कराते हुए बोला.—

“ये महात्मा उन्हीं हीरविजयसूरिके शिष्य हैं जिनको यहाँ आनेका अपने निमंत्रण दिया है । ”

“हाँ ? ये हीरविजयसूरिके शिष्य हैं ?” इतने शब्दोच्चारण के साथ ही बादशाह सिंहासनसे उठा और उपाध्यायजी आदिके-जहाँ वे गलीचेके नीचे खड़े थे-सामने गया। उपाध्यायजीने धर्मलाभ दिया और कहा-“सूरिजीने आपको धर्मलाभ कहलाया है।” बादशाहने आतुरता के साथ पूछा- “मुझे उन परम कृपालु सूरीश्वरजी के दर्शन कब होंगे ?” उपाध्यायजी ने उत्तर दिया-“अभी वे साँगनेर में हैं । जहाँ तक होगा शीघ्र ही यहाँ पहुँचेंगे । ”

उस समय बादशाहने अपने एक आदमीसे उन चारों महात्माओं के नाम, पूर्वावस्था के नाम, उनके माता पिताके नाम और गाँवोंके नाम लिखवा लिये और तब-चाहे उनकी परीक्षा करनेके लिए पूछा हो या और किसी अभिप्राय से पूछा हो-पूछा-“ आप फ़कीर क्यों हुए हैं ?”

उपाध्यायजीने उत्तर दिया—“इस संसार में असाधारण दुःखके कारण तीन हैं। उनके नाम हैं जन्म, जरा और मृत्यु। जब तक मनुष्य इन तीन कारणों से मुक्त नहीं होता है तब तक उसे परम सुख या परम आनंद नहीं मिलता है। इस सुख या आनंदकी प्राप्ति के लिए हम साधु-फकीर हुए हैं। क्योंकि गृहस्थावस्थामें यह जीव अनेक प्रकारकी उपाधियोंसे घिरा रहता है। इस लिए वह अपनी आत्मिक उन्नतिके लिए जिन कार्यों को करनेकी आवश्यकता है उनको नहीं कर सकता है। इसलिए वैसे कारणोंसे दूर रहना ही उत्तम है। यह समज कर ही हमने गृहस्थावस्था का त्याग किया है। आत्मोद्धार करने का यदि कोई असाधारण कारण संसार में है तो वह धर्म ही है और इस धर्म का संग्रह साधु अवस्था में फकीरीही में भली प्रकार से हो सकता है। इसके उपरांत हम पर मृत्यु का डर भी इतना रहता है कि, जिसका कुछ ठिकाना नहीं। कोई नहीं जानता है कि, वह कब आ दबायगी। इस लिए हरेक को उचित है कि, वह महात्मा के इस वचन को कि-

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः ।

नित्यं संनिहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥ १॥

स्मरणमें रखे और धर्म-संचय करनेमें तत्पर रहे।

“राजन् आपके प्रश्न का उत्तर इतने ही शब्दों में आ जाता है। यदि इससे भी संक्षेपमें कहूँ तो इतना ही है कि, गृहस्थावस्था में रह कर लोग चाहिए उस तरह धर्म का साधन नहीं कर सकते हैं और धर्म का साधन करना बहुत जरूरी है। इसी लिए हम साधु-फकीर हुए हैं।”

उपाध्यायजी के इस विवेचन से अकबर को बड़ी प्रसन्नता हुई। उनकी निर्नीकता और अस्खलित वचधारा से बादशाह के हृदय पर

बड़ा प्रभाव पड़ा। उसे बड़ी प्रसन्नता हुई और वह मन में सोचने लगा-जिसके शिष्य ऐसे त्यागी, विद्वान और हौंशियार हैं उनके गुरु कैसे होंगे? उसने अपनी प्रसन्नता शब्दों द्वारा भी प्रकट की। इसके बाद उपाध्यायजी आदि वापिस उपाश्रय आये।

बादशाह के साथ की इस प्राथमिक भेट से उपाध्यायजी और दूसरे मुनियों को यह निश्चय हो गया कि, बादशाह के संबंध में जो किंवदन्तियाँ सुनी जाती थीं वे मिथ्या थीं। बादशाह विनयी, विवेकी और सभ्य है। वह विद्वानों की कदर करता है। उसके हृदय में धर्म की भी वास्तविक जिज्ञासा है।

× × × ×

बादशाह के साथ उपाध्यायजी की मुलाकात हुई। उसके बाद फतेहपुर सीकरी के बहुत से श्रावक श्रीहीरविजयसूरि महाराज की अगवानी के लिए साँगानेर तक गये। उन्होंने बाहशाह और उपाध्यायजी की भेट का सारा वृत्तान्त सुनाया और यह भी कहा कि, बादशाह आपके दर्शनों के लिए बहुत आतुर है। सूरिजी को इन बातों से बड़ा आनंद हुआ। उनके हृदय में किसी कोने में बादशाह के विषय में यदि शंका रही होगी तो वह भी नष्ट हो गई। उनके हृदय में बार बार यह विचार उत्पन्न होने लगा कि,-कब बादशाह से मिलूँ और उसको धर्मोपदेश हूँ। अस्तु ।”

साँगानेर से विहार कर सूरिजी नवलीग्राम, चाटसू, हिंडदण, सिकंदरपुर और बयाना आदि होते हुए अभिरामाबाद पधारे^१ यहाँ संघ में कुछ इगडा था, वह भी सूरिजी के उपदेश से मिट गया। उपाध्यायजी भी फतेहपुरसीकरी से यहाँ तक सामने आये।

१. अभिरामाबाद को कई लेखक अलाहाबाद का पुराना नाम बताते हैं। मगर वह ठीक नहीं है। क्योंकि,-सूरिजी जिस मार्ग से सीकरी गये थे उस मार्ग में

अब फतेहपुरसीकरी केवल छः कोस ही रही है । सूरिजी अभिरामाबाद पहुँच गये हैं । इस तरह की खबर फतेहपुर में बहुत

अलाहाबाद नहीं आता है । अलाहाबाद तो पूर्व दिशा में बहुत दूर रह अब फतेहपुरसीकरी केवल छ कोस ही रही है । सूरिजी अभिरामाबाद पहुँच गये हैं । इस तरह की खबर फतेहपुर में बहुत जल्दी जाती है । यह बात साथ में हीरविजयसूरि के विहार का जो नक्शा दिया गया है उससे स्पष्टतया मालूम हो जायगी । दूसरी बात यह है कि, हीरविजयसूरि ने फतेहपुर जाते आखिर मुकाम अभिरामाबाद ही में किया था । हीरसौमाय काव्य के तेरहवें सर्ग में भी लिखा है कि,-

पवित्रयंस्तीर्थं इवाध्वजन्तुन्पुरेऽभिरामादिवादनाम्नि ।
यावत्समेतः प्रभुरेत्य तावद द्राग्वाचकेन्द्रेण नतः स तावत् ॥४४॥

इससे मालूस होता है कि, विमलहर्ष उपाध्याय फतेहपुरसीकरी से यहाँ तक सामने आये थे । और यहाँ आकर उन्होंने यह बतलाया था कि, बादशाह आपका समागम चाहता है । यह बात इस श्लोक से मालूम होती है,-

मधो पिकीकान्त इवैष युष्मत्समागमं काइक्षति भूमिकान्तः ।
तद्वाचकेनेत्युदितो ब्रतीन्द्रः फतेपुरोपान्तभुवं बभाज ॥४५॥

इस श्लोक से यह भी मालूम होता है कि, जहाँ विमलहर्ष उपाध्याय ने उपर्युक्त समाचार कहे थे वह स्थान फतेहपुर से थोड़ी ही दूर होना चाहिए ।

ऋषमदास कवि 'हीरविजयसूरि रास' में लिखते हैं-

बयाना नइ अभिरामाबाद गुरु आवंतां गयो विषवाद ।
फतेहपुर मणी आवइ जास्य अनेक पंडित पूठिं तस्यइ ॥१५॥
(पृष्ठ १०८)

इससे भी यह विदित होता है कि, अभिरामाबाद सूरिजीका अन्तिम मुकाम था । यहाँ से रवाना होकर वे फतेहपुर हो ठहरे थे ।

इसके उपरान्त एक प्रबल प्रमाण दूसराभी मिलता है । 'जगद्गुरु काव्य' में लिख हैं,-

आयाता इह नाथहीरविजयाचार्याः सुशिष्यान्विता
इत्थं स्थानकसिंहवाचिकमसौ श्रुत्वा नृपोऽकञ्चरः ।

आमंत्रण

जल्दी फैल गई । लोगों का आना जाना शुरू हो गया । दूसरी ओर सूरिजी के सामैये - अगवानी - के लिये थानसिंह, मानुकल्याण और अमीपाल आदि गृहस्थोंने बादशाह से मिलकर शाही बाजे, हाथी, घोड़े आदि जो जो चीजें जरूरी थीं उन उन सब चीजों का प्रबंध कर लिया ।

आज ज्येष्ठ सुदी १२ (वि.सं. १६३९) का दिन है । सबेरे हीसे तमाम शहरमें नवीनताके चिह्न दिखाई दे रहे हैं । कई अपने बालबच्चोंको उत्तमोत्तम आभूषण और वस्त्र पहिनाने लग गये हैं । कई अपने हाथीघोड़ोंका शृंगार करने में लग रहे हैं । कई रथों की तैयारी कर रहे हैं । कई तो सूर्य उगने के पहिले अर्धेरे अर्धेरे ही, यथासंभव, जितनी हो सके उतनी दूर सूरिजी के सामने जाने के लिए, घरसे रवाना हो चुके हैं । इस तरह नौ बजते बजते नगर के बाहिर हाथी, घोड़े, ऊट, रथ और निशान आदि खास लवाज में सहित - जो खास बादशाह की तरफ से मिले थे - लोग सूरिजी की अगवानी के लिए जमा हो गये । थोड़ी ही देर में साधुओं का एक झुंड लोगों को दिखाई दिया । लोग हर्षोल्लास से सूरिजी के सामने जाने लगे । उस समय सूरिजी के साथ में विमलहर्ष उपाध्याय, शान्तिचंद्र गणि, पं. गुणविजय, पं. गुणसागर, पं. कनकविजय, पं. धर्मसीत्रघणि, पं. मानसागर, पं. रत्नचंद्र,

स्वं सैन्यं सकलं फतेहपुराद्रव्यूतष्टूकान्तरा -
यातानामभि सम्मुखं यतिपतीनां प्राहिणोत् स्फीतियुक्तं ॥१६३॥

इससे जान पड़ता है कि, - सूरिजी छः कोस दूर हैं यह जानकर उनका सत्कार करने के लिए उसने अपनी सेना भेजी थी । सुतरां अभिरामाबाद फतेहपुर सीकरी से छः कोस (बारह माइल) दूर था । यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है । कारण - वह अन्तिम मुकाम था । जैसा कि ऊपर बताया गया है । और इसी हेतु से, इस वक्त इस नामका कोई गाँव न होने, और टिग्नो मेट्रिकलसर्वे में भी इस नाम के किसी गाँव का उल्लेख न होने पर भी उस समय उपर्युक्त नाम का गाँव होने से सूरिजी के विहार के नकशे में यह नाम दिया गया है ।

काहर्षि, पं. हेमविजय, ऋषि जगमाल, पं. रत्नकुशल, पं. रामविजय, पं. मानविजय, पं. कीर्तिविजय, पं. हंसविजय, पं. जसविजय, पं. जयविजय, पं. लाभविजय, पं. मुनिविजय, पं. मुनिविजय, पं. धनविजय, पं. मुनिविमल और मुनि जसविजय आदि ६७ साधु थे। इन साधुओं में कई वैयाकरण थे और कई नैयायिक, कई बादी थे और कई व्याख्यानी, कई अध्यात्मी थे और कई शतावधानी, कई कवि थे और कई ध्यानी। इस भाँति भिन्न भिन्न विषयों में असाधारण योग्यता रखनेवाले थे। सूरिजी दर्वाजे के पास आये। तमाम संघने उन्हें सविधि वंदना की। कुमारीकाओं ने उन्हें सोने-चाँदी के फुलोंसे बधाया। कई सौभाग्यवतियों ने मोतियों के चौक पूरे। इस भाँति शुभ शकुनों सहित सूरिजी जिस वक्त फतेहपुर-सीकरीके एक महल्ले में हो कर गुजर रहे थे, उसी समय उस महोल्ले में रहनेवाला एक सामन्त जीसका-नाम 'जगन्मल्ल कछवाह था-आ कर सूरिजी के चरणों मे गिरा और अपने महल को, सूरिजी के चरणस्पर्श से पवित्र करने के शुभ उद्देश्य से, उन्हें अपने महल में ले गया। इतना ही नहीं उसने उन्हे एक रात और दिन अपने यहाँ रखा और उनके मुखार्विद से उपदेश सुना।

सूरिजीने अपने विहार की जो सीमा निर्धारित की थी यहाँ पर उसका अन्त होता है। सूरिजी गंधार से विहार करके जिस मार्ग फतेहपुर-सीकरी पधारे थे उस रास्ते का निर्णय, हीरविजयसूरिरास, हीरसौभाग्य काव्य, विजयप्रशस्ति और लाभोदय रास से किया गया है। और उसीका ट्रिग्नोमेट्रिकल सर्वे के नकशों के साथ मीलान करके सूरिजी के विहार का नक्शा तैयार कराया गया है। जो इसीके साथ दिया गया है।

१ यह वही जगन्मल्ल कछवाह है जो जयपुर के राजा बिहारीमल का छोटाभाई था। जिनको इसके संबन्ध में विशेष हाल जानना हो वे आईन-ई-अकबरी के प्रथम भाग का, ब्लॉकमेन के अंग्रेजी अनुवाद का ४३६ वाँ पेज देखें।

प्रकरण पाँचवाँ।

प्रतिबोध।

आज ज्येष्ठ सुद १३ का दिन है। प्रातःकाल होते ही थानसिंह आदि श्रावक सूरिजी महाराज के पास आये। सूरिजी के हृदय में स्वाभाविक आनंद का संचार हो रहा है। सूरिजी जिस कार्य के लिए अनेक कष्ट उठा कर, सैकड़ों कोसों की मुसाफिरी कर यहाँ आये हैं उस कार्य का आज ही मंगलाचरण करना चाहते हैं। शुभ कार्य को प्रारंभ करने के पहिले मंगलनिमित्त कार्य निर्विघ्न समाप्त हो इस हेतुसे-अमुक संयम-तप करने का संकल्प किया जाता है इसलिए आज उन्होंने आँबिल^१ करने का संकल्प किया है। उन्होंने यह भी निश्चित किया है कि, वे कार्य प्रारंभ करने के बाद ही उपाश्रय में जावेंगे।

पाठकोंसे यह छिपा हुआ नहीं है कि, सूरिजी को अभी कौन से महत्व का कार्य करना है। अकबर को प्रतिबोध करना ही सूरिजी का साध्यबिंदु है। सबैरे ही सूरिजी ने यह व्यवस्था कर ली कि, जिन विद्वान् साधुओं को अपने साथ राजसभामें लेजाना था उन्हें अपने पास रखा, दूसरों को उपाश्रय भेज दिया।

जगमालकछवाहे के यहाँ से रवाना हो कर पहिले अबुल्फजल के घर की तरफ चले। जब वे सिंहद्वार नामक मुख्य दर्वाजे पर

१. आँबिल जैनियों की एक तपस्या विशेष का नाम है। इस तपस्या के दिन केवल एक ही वक्त नीरस-घी, दूध, दर्ही, गुड आदि वस्तुओं से रहित-भोजन किया जाता है।

पहुँचे तब थानसिंह आदि श्रावकों ने अबुल्फजल के पास जाकर कहा कि सूरिजी सिंहद्वार पर आये हैं। साथ भी उन्होंने यह भी जतला दिया कि वे इसी समय बादशाह से मिलना चाहते हैं।

अबुल्फजलने कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप बादशाह के पास चला गया, और बोला:-“हीरविजयसूरिजी सिंहद्वार तक आ गये हैं। यदि आज्ञा हो तो उन्हें आपके पास ले आऊँ। वे इसी समय आपसे मिलना चाहते हैं।”

बादशाहने उत्तर दिया:-“जिनको मिलने के लिए मैं आतुर हो रहा था उनके पधारने के समाचार सुन कर मुझे बहुत ज्यादा आनंद हो रहा है। मगर खेद है कि, मैं उनसे इसी समय नहीं मिल सकता। मेरा मन इस समय किसी दूसरे कार्य में लग रहा है। मैं महल में जाता हूँ। वहाँ से वापिस आऊँ तब तुम सूरिजी को ले आना। इस समय सूरिजी को अपने यहाँ लेजाओ और उनके चरणकमल से अपना घर पवित्र करो।”

बादशाह का यह उत्तर हरेक सहदय को बुरा लगेगा। जिनको सैकड़ों कोसों की मुसाफिरी कराकर अपने पास बुलाया था, जिनसे मिलने के लिए चातक की तरह व्याकुल हो रहा था वे ही जब फतेहपुर में आ जाते हैं, फतेहपुर ही क्यों, मिलने के लिए सिंहद्वार तक आ पहुँचते हैं और मिलने के लिए पुछवाते हैं तो उत्तर मिलता है कि, ‘मैं अभी कार्य में व्यग्र हूँ; थोड़ी देर के बाद मिलूँगा।’ इसका अर्थ क्या होता है? ऐसा उत्तर बादशाह के किस दुर्गुण का परिणाम था सो खोज निकालना असंभव नहीं तो भी कष्टसाध्य अवश्य है।

‘श्री हीरसौभाग्यकाव्य’ के कर्ता १३ वें सर्गके १३६ वें श्लोककी टीकामें, इस विषय का उल्लेख करते हुए लिखते हैं की,-“एतत्कथनं

त्वप्रतिबुध्थत्वेन अज्ञाततत्वभावेन म्लेच्छत्वेन वा। यध्यास्तिकः स्यात्तदा तु सर्वमपि त्यक्त्वा बन्दत एव” मगर हमको तो उसके मदिरा के व्यसन का ही यह परिणाम मालूम होता है। जैसा कि, हम तीसरे प्रकरण में बता चुके हैं। उससे इसी व्यसन के कारण अनेक अविवेकी व्यवहार हो जाते थे। जब उनके हृदय में मदिरा-पानकी इच्छा उत्पन्न होती थी तब वह बड़े बड़े महत्व के कार्यों को भी छोड़कर-और क्यों, चाहे किसी ऊँची श्रेणी के मनुष्य को मिलने के लिए बुलाया होता तो भी-उससे भी न मिलकर-अपनी शराब पीने की इच्छा को पूर्ण करता था। क्या यह कहना अनुचित है कि उसने अपनी शराब की बुरी आदत के कारण ही वैसा उत्तर दिया था? अस्तु। वास्तविक बात तो यह है कि, सूरिजी के हृदय में बादशाह से मिलने की जितनी तीव्र इच्छा हुई थी, उससे हजार गुनी तीव्र इच्छा बादशाह को तत्काल ही होनी चाहिए थी।

कहावत है कि,-‘जो कुछ होता है वह भले ही के लिए होता है।’ यह एक सामान्य नियम है। इसीके अनुसार अब दूसरी तरह से इस बात का विचार किया जाएगा। एक तरह से तो बादशाह तत्काल ही सूरिजी से नहीं मिला, इससे लाभ ही हुआ। कारण-बादशाह से मिलने से पहिले सूरिजी को-बादशाह का सर्वस्व गिने जाने वाले-विद्वान शेख अबुल्फजल से बहुत देर तक बातचीत करने का मौका मिला। उससे बादशाह को मिलने से पहिले, बादशाह के खास मानीते एकाध पुरुष के अन्तःकरण में सूरिजी की विद्वत्ता और पवित्रता के विषय में पूज्यभाव उत्पन्न कराने की जो आवश्यकता प्रतित होती थी वह भी पूर्ण हो गई। अर्थात्-अकबर से मिलने के पहिले, जो अवकाश मिला उसमें सूरिजी शेख अबुल्फजल के यहाँ गए और बहुत समय तक उसके साथ धर्म-चर्चा करते रहे।

बिन्सेंट स्मिथ भी लिखता है कि,-“बादशाह को उससे

(हीरविजयसूरिसे) वार्तालाप करने का अवकाश मिला तब तक वे अबुलफ़ज़्ल के पास बिठाये गये थे ।”

“The weary traveller was made over to the care of Abul Fazal until the sovereign found leisure to converse with him.”

[Akbar p. 167]

अबुलफ़ज़्ल के साथ उनकी यह प्राथमिक भेट और प्राथमिक धर्मचर्चा थी । इसमें अबुलफ़ज़्ल ने कुरानेशरीफ़ की कई आज्ञाओं का प्रतिपादन किया था । जिन बातों का अबुलफ़ज़्ल ने प्रतिपादन किया उन्हीं बातों को सूरिजीने उसे युक्तिपूर्वक समझाया, ईश्वर का वास्तविक स्वरूप बताया और कहा कि दुःखसुख का देनेवाला ईश्वर नहीं है, बल्कि जीव के कर्म है । उसके साथ ही उन्होंने दयाधर्म का प्रतिपादन भी किया । शेष अबुलफ़ज़्ल को सूरिजी की विद्वत्तापूर्ण वाणी से और युक्तियों से बहुत ज्यादा आनंद हुआ ।

अबुलफ़ज़्ल के यहाँ चर्चा करने ही में लगभग मध्याह्न काल बीत गया । यह तो हम पहिले ही कह चुके हैं कि उस दिन सूरिजी ने आंबिल की तपस्या की थी । अब वहाँ से उपाश्रय जाना और आहार करके वापिस आना करीब करीब अशक्य हो गया था । कारण वैसा करने में बहुत ज्यादा समय बीत जाता । इसीलिए सूरिजी उपाश्रय न गये । अबुलफ़ज़्ल के महल के पास ही ^१करणराज नाम के एक हिन्दु ग्रुहस्थ का मकान था । उन्होंने गोचरी लाकर उसी के एक एकान्त स्थल में आंबिल कर लिया ।

१. करणराज का खास नाम रामदास कछवाह था । राजा करण उसका विरुद्ध था । यह करणराज ५०० सेना का स्वामी था । जो इस के विषय में विशेष जानना चाहते हैं उन्हें चाहिए कि, वे आईन-इ-अकबरी के प्रथम भाग के अंग्रेजी अनुवादका - जो ब्लॉकर्मन का किया हुआ है-४८३ वाँ पृष्ठ देखें ।

इधर सूरिजी आहार-पानी करके निवृत्त हुए । उधर बादशाह भी अपने कामसे छुट्टी पाकर दर्बार में आया । उसने दर्बार में आते ही सूरिजी महाराज को बुलाने के लिए एक आदमी भेजा । समाचार मिलते ही सूरिजी अपने कई विद्वान शिष्यों-थानसिंह और भानुकल्याण आदिगृहस्थ श्रावकों और अबुलफ़ज़्ल सहित दर्बार में पधारे ।

कहा जाता है कि, उस समय सूरिजी के साथ सैद्धान्तिक शिरोमणि उपाध्याय श्रीविमलहर्षगणि, शतावधानी श्रीशान्तिचंद्रगणि, पंडित सहजसागरगणि, पंडित सिंहविमलगणि, ('हीरसौभाग्य काव्य' के कर्ताके गुरु) वकृत्व और कवित्व शक्ति में सुनिपुण पंडित हेमविजयगणि, ('विजयप्रशस्ति' आदि काव्यों के कर्ता') वैयाकरण चूडामणि पंडित लाभविजयगणि, और सूरिजी के प्रधान (दीवान) गिने जानेवाले श्रीधनविजयगणि आदि तेरह साधु गये थे । आश्वर्य की बात तो यह है, कि वह दिन भी तेरस का था और साधुओं की संख्या भी तेरह ही थी ।

बादशाह ने दूर ही से इस साधुमंडल को आते देखा । देखते ही वह अपना सिंहासन छोड़कर उठ खड़ा हुआ और अपने तीन पुत्रों-शेखुजी, पहाड़ी (मुराद) और दानियाल - सहित उनके सम्मानार्थ उनके सामने गया । बड़े आदर के साथ सूरिजी को अपनी बठक तक ले गया । उस समय, एक तरफ अकबर, अपने तीन पुत्रों और अबुलफ़ज़्ल, बीरबल आदि राज्य के बड़े बड़े कर्मचारियों सहित हाथ जोड़े सामने खड़ा था और दूसरी तरफ जिनके मुखमंडलसे तपस्तेज-ज्योति चमक रही थी, ऐसे सूरिजी अपने विद्वान् मुनियों सहित खड़े थे । वह दृश्य कैसा था ? इसकी कल्पना पाठक स्वयमेव करलें ।

इस तरह बादशाह के बाहिर के बाहिरवाले दालान में - जो संगमरमरका बना हुआ था - दोनों मंडल खड़े रहे । बादशाहने सविनय सूरिजी से कुशल - मंगल पूठा और कहा :-

“महाराज ! आपने मेरे समान मुसलमान कुलोत्पन्न एक तुच्छ मनुष्य पर उपकार करने की इच्छा से जो कष्ट उठाया है उसके लिए मैं अहसान मानता हूँ” और कष्ट दिया उसके लिए क्षमा चाहता हूँ। मगर कृपा करके यह तो बताइए कि, मेरे अहमदाबाद के सूबेदारने क्या आपको हाथी, घोड़े आदि साधन नहीं दिये थे जिससे आपको इतनी लंबी सफर पैदल ही चल कर पूरी करनी पड़ी ।”

सूरिजीने उत्तर दिया:- “नहीं राजन् ! आपकी आज्ञा के अनुसार आपके सूबेदारने तो सारे साधन मेरे सामने उपस्थित किये थे; परन्तु साधुर्धम के आधीन होकर मैं उन साधनों को ग्रहण न कर सका। आपने, यहाँ आने से मुझे तकलीफ हुई है, यह कहकर क्षमा मार्गी है, यह आपकी सज्जनता है। मगर मुझे तो इसमें कोई ऐसी बात नहीं दिखती जिसके लिए आप क्षमा माँगते या उपकार मानते। कारण, - हमारे साधु जीवन का तो मुख्य कर्तव्य ही ‘धर्मोपदेश देना है।’ हमें इस कर्तव्य को पूरा करने के लिए यदि कहीं दूर देशों में जाना पड़ता है तो जाते हैं और धर्माचार को सुरक्षित रखने के लिए शारीरिक कष्ट झेलने पड़ते हैं तो उन्हें भी झेलते हैं। इस कृति से हम यह सोच कर संतुष्ट होते हैं कि, हमने अपना कर्तव्य किया है। इसलिए आपको इस विषय में लेशमात्र भी विचार नहीं करना चाहिए ।”

सूरिजी के इस उत्तर से बादशाह के अन्तःकरण पर सूरिजी की कर्तव्यनिष्ठता का असाधारण प्रभाव पड़ा। इस विषय में फिरसे बादशाह सूरिजी को कुछ न कह सका। मगर उसने थानसिंहको कहा:-

“थानसिंह” ! तुझे चाहिए था कि तू मुझे सूरिजीके इस कठोर आचार के संबंध में पहिलेही से परिचति कर देता। यदि मुझे पहिले मालूम हो जाता तो मैं सूरिजीको इतना कष्ट न देता ।”

थानसिंह टगर टगर बादशाह की ओर देखता रहा। उसे न सूझा कि, वह क्या उत्तर दे ? उसको मौन देखकर बादशाहने स्वयंही कहा:-

“ठीक ठीक ! थानसिंह ! मैं तेरी बनियाबुध्धि समझ गया। तूने अपना मतलब साधनेही के लिए मुझको सब बातों से अज्ञात रखा था। सूरिजी महाराज पहिले कभी इस देशमें आये न थे, इसी लिए उनकी सेवा - भक्ति का लाभ उठाने के लिए तू मेरी बातोंको पुष्ट करता रहा। मुझे यह न समझाया की सूरिजी को यहाँ बुलाने में कितनी कठिनता है। ठीक है ऐसे महा पुरुष की भक्ति का लाभ मुझे और तेरे जातिभाइयों को मिले तो इससे बढ़कर और क्या सौभाग्य की बात हो सकती है !”

बादशाह की इस मधुर और हास्ययुक्त वाणीसे दोनों मंडल-मुनिमंडल और राजमंडल-आनंदित हुए। उसी समय बादशाहने उन दोनों मनुष्यों को - मुझनुदीन (मौदी) और कमालुदीन (कमाल) को बुलाया, जो कि बादशाह का आमंत्रण पत्र लेकर सूरिजी के पास गये थे। उनसे अकबरने, ‘सूरिजी को रस्ते में कोई तकलीफ तो नहीं हुई थी ?’ ‘वे मार्ग में कैसे चलते थे’ आदि बातें पूछीं और इनका उत्तर सुनकर बादशाह को बहुत आनंद हुआ। उसने सूरिजी के उत्कृष्ट आचार की अन्तःकरणपूर्वक प्रशंसा की और उसके बाद पूछा:-

“महाराज ! आप कृपा करके यह बताइये कि, आपके धर्म में बड़े तीर्थ कौन से माने गये हैं ।”

सूरिजीने शत्रुंजय, गिरिनार, आबू सम्मेतशिखर और अष्टापद आदि कई मुख्य मुख्य तीर्थों के नाम बताये और साथ ही थोड़ा थोड़ा उन सबका परिचय भी दिया ।

इस तरह खड़े हुए बातें करते बहुत सा वक्त बीत गया । सूरिजी के साथ वार्तालाप करके अकबर को बहुत आनंद हुआ । उसके चित्त में एक स्थान में निश्चन्तभाव से बैठकर सूरिजी के मुखकमल से धर्मोपदेश सुनने की अभिलाषा उत्पन्न हुई । इसी लिए उसने अपनी चित्रशाला के एक मनोहर कमरे में पधारने की नम्रता के साथ सूरिजी से विनति की । सूरिजी ने भी उपदेश का उचित अवसर जान उसकी बिनति स्वीकार की । फिर बादशाह आदि सभी चित्रशाला के पास गये ।

चित्रशाला के दर्वाजे पर एक सुंदर गालीचा बिछा हुआ था । उस पर पैर रख कर चित्रशाला में प्रवेश करना होता था । सूरिजीने उस गालीचे को देखा । वे दर्वाजे के पास जाकर खड़े हो रहे । बादशाह विचार करने लगा कि,-सूरिजी ! किस सबबसे अंदर आते रुक गये हैं ? बादशाह कुछ पूछना ही चाहता था, इतने में सूरिजी स्वयं बोले:-

“राजन् ! इस गालीचे पर होकर हम अंदर नहीं जा सकते, कारण-गालीचे पर पैर रखने का हमको अधिकार नहीं है ।”

बादशाहने आशर्चर्य के साथ पूछा:- “महाराज ! ऐसा क्यों ? गालीचा बिल्कुल स्वच्छ है । कोई जीव-जन्तु इस पर नहीं है । फिर इस पर चलने में आपका हर्ज क्या है ?”

सूरिजीने गंभीरतापूर्वक उत्तर दिया:- “राजन् केवल जैन साधुओं के लिए ही नहीं बल्के तमाम धर्मों के साधुओं के लिये यह नियम है कि, ‘दष्टिपूतं न्यसेत् पादम्’ (मनुस्मृति, अ० ६८ श्लोक ४६वाँ) अर्थात् जहाँ चलना या बैठना हो वहाँ पहिले देख लेना चाहिए । इस जगह गालीचा बिछा हुआ है इसलिए हम नहीं देख सकते हैं कि, इसके नीचे क्या है ? इसीलिए हम इस गालीचे पर नहीं चल सकते हैं ।

१. दष्टि से पवित्र धनी हुई जगह पर पैर रखना चाहिए ।

इस उत्तर से बादशाह मन ही मन हँसा,-ऐसे मनोहर गालीचे के नीचे जीव कहाँ से घुस गये होंगे ? फिर उसने सूरिजी को अंदर ले जाने के लिए अपने हाथसे गालीचे का एक पल्ला हटाया । गालीचा हटाते ही बादशाह के आशर्चर्य का ठिकाना न रहा । उसने देखा कि, वहाँ हजारों कीड़ियाँ फिर रही हैं । उसे अपनी भूल मालूम ह्रौदी । सूरिजी के प्रति उसकी जो श्राध्धा थी उसमें सौगुनी वृथ्थ हो गई । वह बोल उठाः- “बेशक, सच्चे फकीर ऐसे ही होते हैं !” फिर उसने गालीचा वहाँ से उठवा दिया और रेशम के एक कपड़े से वहाँ से कीड़ीयाँ स्वयं हटा दीं । तदनन्तर सूरिजीने उस कमरे में प्रवेश किया ।

बादशाह और सूरिजी अपने अपने उपयुक्त आसन पर बैठे । बादशाहने नम्रतापूर्वक धर्मोपदेश सुनने की जिज्ञासा प्रकट की । सूरिजीने पहिले कुछ सामान्य उपदेश दिया । और संक्षेप में देव, गुरु और धर्मका उपदेश देते हुए कहा:-

“जब कोई मकान बनवाता है तब वह तीन चीजोंको-नींव, दीवार और धरन को मजबूत करवाता है । उससे मकान बनवाने वालेको सहसा मकान के गिरने की आशंका नहीं रहती । इसी तरह से मनुष्य-जीवनकी निर्भयता के लिए मनुष्य मात्र को चाहिए कि वह देव, गुरु और धर्म को - उनकी परीक्षा करके-स्वीकार करे । कारण-प्रकृति का नियम है कि, मनुष्य यदि गुणी की सेवा-सहवास करता है तो वह गुणी बनता है और यदि निर्गुणीका सेवा-सहवास करता है तो वह निर्गुणी बनता है । इसलिए देव, गुरु और धर्म की जाँच करके ही उन्हें ग्रहण करना हितावह होता है ।

“संसार में आज जितने मतमतान्तरों और दर्शनों के झगड़े दिखाई दे रहे हैं, वे सारे ईश्वर को लेकर ही हो रहे हैं । यद्यपि ईश्वर को मानने से कोई इन्कार नहीं करता है तथापि नाम-भेदसे और

उसके स्वरूप को भिन्न भिन्न प्रकार से मानने के कारण, झगड़े खड़े हुए हैं। देव, महादेव, शंकर, शिव, विश्वनाथ, हरि, ब्रह्मा, क्षीणाष्टकर्मा, परमेष्ठी, स्वयंभू जिन, पारगत, त्रिकालविद्, अधीश्वर, शंभु, भगवान, जगत्प्रभु, तीर्थकर, जिनेश्वर, स्याद्वादी, अभयद, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, केवली, पुरुषोत्तम, अशरीरी और वीतराग आदि अनेक ईश्वर के नाम हैं। ये सारे ही नाम गुणनिष्ठन हैं। इन नामों के अर्थ में किसी को विवाद नहीं है। मगर सिर्फ नाम में विवाद है। देव-महादेव-ईश्वर का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है।

“जिसमें क्लेश उत्पन्न करनेवाला ‘राग’ नहीं है; शान्तिरूपी काष्ठ को जलानेवाली अग्नि के समान ‘द्वेष’ नहीं है; शुद्ध-सम्यग्-ज्ञानको नाश करनेवाला और अशुभ आचरणों को बढ़ानेवाला ‘मोह’ नहीं है और तीनलोक में जो महिमामय है वही महादेव है; जो सर्वज्ञ है, शाश्वत सुखका भोक्ता है और जिसने सब तरह के ‘कर्मों’ को क्षय करके मुक्ति पाई है तथा परमात्मपद को प्राप्त किया है वही महादेव अथवा ईश्वर है। दूसरे शब्दों में कहें तो ईश्वर वह होता है जो जन्म, जरा और मृत्यु से रहित होता है; जिसके रूप, रस, गंध और स्पर्श नहीं होते हैं और जो अनंत सुखका उपभोग करता है।

ईश्वर का जो स्वरूप ऊपर बताया गया है उससे यह बात सहजही समझ में आजाती है कि, ईश्वर के लिए कोई ऐसा बाकी नहीं रह जाता है जिससे उसको फिरसे जन्म धारण कर संसार में आना पड़े। क्योंकि उसके सारे कर्म क्षय हो जाते हैं। यह नियम है कि, - ‘कोई भी आत्मा कर्मों को नष्ट किये बिना संसार से मुक्त नहीं हो सकता है और जब वह मुक्त हो जाता है तो फिर संसार में नहीं आ सकता है।’ यह जैनधर्म का अटल सिद्धान्त है। ‘संसार’ शब्द से देव, मनुष्य, तिर्यंच और नरक ये चार गतियाँ समझनी चाहिए।

इस तरह देव का संक्षेप में स्वरूप वर्णन करने के बाद सूरजीने गुरुका स्वरूप बताते हुए कहा :-

“गुरु वे ही होते हैं जो पाँच महाब्रतों-अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह-का पालन करते हैं, मिक्षावृत्तिसे अपना जीवननिर्वाह” करते हैं, जो स्वभावरूप सामायिक में हमेशा स्थिर रहते हैं और जो लोगों को धर्म का उपदेश देते हैं। गुरु के इन संक्षिप्त लक्षणोंका जितना विस्तृत अर्थ करना हों, हो सकता है। अर्थात् साधु के आचार-विचारों और व्यवहारों का समावेश उपर्युक्त पाँच बातों में हो जाता है। गुरु में दो बातें-जो सबसे बड़ी हैं - तो होनी ही चाहिए। वे हैं (1) स्त्रीसंसर्ग का अभाव और (2) मूर्छा का त्याग। जिसमें ये दो बातें न हो वह गुरु होने या मानने योग्य नहीं होता है। इन दो बातों की रक्षा करते हुए गुरु को अपने आचार-व्यवहार पालने चाहिए। गुरु के लिये और भी बातें कही गई हैं। वह अच्छे स्वादु और गरिष्ठ भोजन का बारबार उपयोग न करे, दुस्सह कष्ट को भी शान्ति के साथ सहे, इका, गाड़ी, घोड़ा, ऊँट, हाथी और रथ आदि किसी भी तरह के वाहन की सवारी न करे, मन, वचन और कायसे किसी जीवको कष्ट न दे, पाँचों इन्द्रियाँ वशमें रखे, मान-अपमान की परवाह न करे, स्त्री, पशु और नपुंसक के सहवाससे दूर रहे, एकान्त स्थान में स्त्री के साथ वार्तालाप न करे, शरीर सजाने की और प्रवृत न हो, यथाशक्ति सदैव तपस्या करता रहे, चलते फिरते, उठते बैठते और खाते पीते, प्रत्येक क्रिया में उपयोग रक्खे, रात में भोजन न करे, मंत्रयंत्रादिसे दूर रहे औ अफीम वगेहके व्यसनों से दूर रहे। ये और इसी तरह अनेक दूसरे आचार साधुको-गुरुको पालने चाहिए। थोड़े शब्दों में कहें तो, -“गृहस्थानां यद्भूषणं तत् साधुनां दूषणम् ।” (गृहस्थों के लिये जो भूषण है साधुओं के लिए वही दूषण रूप है ।)”

सूरिजीने इस मौके पर यह बात भी स्पष्ट शब्दों में कह दी थी कि, -मैं यह नहीं कहना चाहता हूँ कि गुरु के आचरण बतलाये गये हैं वे सभी हम पालते हैं तो भी इतना जरूर है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार यथासाध्य उन्हें पालने का प्रयत्न हम अवश्यमेव करते हैं ।

फिर सूरिजी धर्म का लक्षण बतलाते हुए बोले :-

“संसार में अज्ञानी मनुष्य जिस धर्म का नाम लेकर क्लेश करते हैं, वास्तव में वह धर्म नहीं है । जिस धर्म के द्वारा मनुष्य मुक्त बनना और सुखलाभ करना चाहते हैं उस धर्म में क्लेश नहीं हो सकता है । वास्तव में धर्म वह है जिस से अन्तःकरण की शुद्धि होती है । (अन्तःकरण- शुद्धित्वं धर्मत्वम्) यह शुद्धि चाहे किन्हीं कारणों से हो । दूसरे शब्दों में कहें तो धर्म वह है जिस से विषयवासना से निवृत्ति होती है । (विषयनिवृत्तित्वं धर्मत्वम् ।) यह धर्म का लक्षण है । इस में क्लेश को कहाँ अवकाश है ? इन लक्षणोंवाले धर्म को मानने से क्या कोई इन्कार कर सकता है ? कदापि नहीं । संसार में असली धर्म यही है और इसी से इच्छित सुख-मुक्तिसुख प्राप्त हो सकता है ।”

सूरिजी के इस उपदेश का अकबर के हृदय पर गहरा प्रभाव हुआ । उसने मुक्त कंठ से स्वीकार किया कि, -“यह पहिला ही मौका है जो देव और धर्म का सच्चास्वरूप मेरी समझ में आया है । आज से पहिले मुझे किसीने इस तरह वास्तविक स्वरूप नहीं समझाया था । आज तक जो आये उन्होंने अपना ही कहा । आज का दिन मुबारिक है कि आप आये और मैं देव, गुरु और धर्म के असली स्वरूप का जानकार हुआ ।”

इस तरह अनेक प्रकार से बादशाह ने सूरिजी की प्रशंसा की ।

उनके उत्तम पाण्डित्य और चारित्र के लिए उसके हृदय में आदरके भाव स्थापित हुए । उसको निश्चय हो गया कि ये असाधारण महापुरुष हैं ।

उसके बाद बादशाहने सूरिजीसे पूछा :- “महाराज ! मेरी मीन राशिमें शनिश्वरजी की दशा बैठी है । लोग कहते हैं कि, यह दशा दुर्जन और यमराज के समान हानि पहुँचानेवाली है । मुझे इसका बहुत ज्यादा डर है । इससे आप महरबानी करके कोई ऐसा उपाय कीजीए जिससे यह दशा टल जाय ।”

सूरिजीने स्पष्ट शब्दों में कहा:- “सप्राट ! मेरा विषय धर्म है, ज्यौतिष नहीं । इस बात का संबंध ज्यौतिष से है । इसलिए मैं इस विषय में कुछ कहने या करने में असमर्थ हूँ । आप किसी ज्योतिषी से पूछिए । वह योग्य उपाय बतायगा और करेगा ।”

बादशाह जो बात चाहता था वह न हूँ । वह चाहता था कि, सूरिजी उसको कोई ऐसा मंत्र या तावीज देते जिससे उस पर शनिकी दशा का असर न होता । मगर सूरिजीने जब यह उत्तर दिया कि, यह मेरा विषय नहीं है तब बादशाहने अपनी इच्छा शब्दों द्वारा व्यक्त की:-

“महाराज ! मुझे ज्योतिषशास्त्री से कोई मतलब नहीं है । आप मुझे कोई ऐसा तावीज बना दीजिए जिससे शनिकी खराब दशा मुझ पर असर न करे ।”

सूरिजीने उत्तर दिया :- “यंत्र-मंत्र करना हमारा काम नहीं है । हाँ हम यह कह सकते हैं कि, यदि आप जीवों पर महरबानी करेंगे, उन्हें अभय बनायेंगे तो आपका भला ही होगा । कारण-प्रकृति का नियम है कि, जो दूसरों की भलाई करता है उसका हमेशा भला ही होता है ।”

बादशाह के बहुत कुछ कहने सुनने और आग्रह करने पर भी सूरिजी अपने आचार के विपरीत कार्य करने को तत्पर नहीं हुए तब अकबर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अबुलफ़ज़ल के सामने आचार्य महाराजकी भूरि भूरि प्रशंसा की। बादशाहने सूरिजी के संबंध की और भी कई बातें—जैसे सूरिजी के शिष्य कितने हैं? इनके गुरु का क्या नाम है? आदि-साधुओं से दर्यापत्त कर लीं।

तत्पश्चात् अकबरने अपने ज्येष्ठ पुत्र शेखूजी के द्वारा अपने सारे ग्रंथ वहाँ मँगवाये। शेखूजी ने ग्रंथ संदूकमेंसे निकाल निकाल कर खानखाना^१ के साथ बादशाह के पास भेज जिये। सूरिजी और विमलहर्ष उपाध्याय आदि साधुमंडल को ये ग्रंथ देखकर बड़ा आनंद हुआ। कहा जाता है कि, उसके भंडार में जैन और दूसरे दर्शनों के भी अनेक प्राचीन ग्रंथ थे।

सूरिजीने पूछा:-“आपके पास ऐसे उत्तम ग्रंथों का भंडार कैसे आया?” बादशाह ने उत्तर दिया:-“हमारे यहाँ पद्मसुंदर नामके नागपुरीय तपागच्छ के एक विद्वान् साधु थे। वे ज्योतिष, वैद्यक और सिद्धांत में अच्छे निपुण थे। उनका स्वर्गवास हो गया तभी से मैंने उनके ग्रंथ संभालकर रखवे हैं। आप अनुग्रह करके अब इन ग्रंथों का स्वीकार करें।”

बादशाह की इस उदारवृत्ति के लिये सूरिजी को बहुत आनंद हुआ। मगर पुस्तकें लेने से उन्होंने इन्कार कर दिया; क्योंकि अपनी

१. खानखाना का पूरा नाम ‘खानखानान मिर्ज़ा अब्दुर्रहीम’ था। उसके पिता का नाम बेहरामखँ था। जब उसने गुजरात को जीता था तब उस पर प्रसन्न होकर बादशाहने उसे ‘खानखाना’ का खिताब दिया था और पाँच हजार फौजका सेनापति भी बनाया था। इसके लिए जो विशेष जानना चाहते हैं वे ‘आईन-इ-अकबरी’ के ब्लॉकमैनकृत अंग्रेजी अनुवाद के प्रथम भागका ३३४ वाँ पृष्ठ और ‘मीराते अहमदी’ के गुजराती अनुवाद का १५१-१५४ पृष्ठ देखें।

पुस्तकें करके रखने से मोह-ममत्व हो जाने का भय रहता है। उन्होंने कहा:-“हम जितने ग्रंथ उठा सकते हैं उतने ही अपने पास रखते हैं। विशेष नहीं। हमको प्रायः जिन ग्रंथों की आवश्यकता पड़ती है वे हमें विहारस्थल के भंडारोंमेंसे मिल जाते हैं। एक बात और भी है। इतनी पुस्तकें यदि हम अपनी करके रखें तो संभव है कि, उन पर हमारा ममत्व होजाय, इसलिए यही श्रेष्ठ है कि, हम ऐसे कारणों से दूर रहें।”

(ग्रंथों के लिए झगड़ा करनेवाले आजकल के महात्माओं को श्रीहीरविजयसूरिजी के उपयुक्त शब्दों पर ध्यान देना चाहिए। समय अपना कार्य किये ही जाता है। उस काल में न तो वर्तमान जितने पुस्तकालय थे और न साधन ही; तो भी उस काल के साधु मोहमाया के भयसे पुस्तक-संग्रह से कितने दूर रहते थे सो सूरिजी के उपर्युक्त वचनों से स्पष्ट होता है।

सूरिजी की इस निःस्पृहता से यद्यपि बादशाह बहुत खुश हुआ तथापि वह बारबार यही प्रार्थना करता रहा कि, -“आप हर सूरत से मेरी इस छोटीसी भेटको मंजूर करही लीजिए।”

अबुलफ़ज़लने भी कहा:-“यद्यपि आपको पुस्तकों की आवश्यकता नहीं है तथापि पुण्यकार्य समझकर आप इनको ग्रहण करें। यदि आप ये ग्रंथ ग्रहण करेंगे तो बादशाह को बहुत खुशी होगी।”

सूरिजीने विशेष वाक्य-व्यय न कर ग्रंथ स्वीकार किये और कहा:-“इतने ग्रंथ हम कहाँ कहाँ लिए फिरेंगे? इन ग्रंथोंको रखनेके लिए एक भंडार बना दिया जाय तो उत्तम हो। हमें जब किसी ग्रंथ की आवश्यकता होगी, पढ़ने के लिए मँगा लेंगे।”

बादशाह ने भी यह बात पसंद की। सबकी सलाह से एक भंडार बनाया गया और उसका कार्य थानसिंह सो सोंपा गया।

'विजयप्रशस्तिकाव्य' के लेखक के कथनानुसार यह भंडार आगे में अकबर के नाम ही से खोला गया था ।

बादशाह के साथ की पहिली मुलाकात इस तरह समाप्त हुई । सूरिजी बड़ी धूमधाम के साथ उपाश्रय गये । श्रावकोंमें आनंद और उत्साह फैल गया । थानसिंह आदि कई श्रावकोंने इस शुभ प्रसंग की खुशी में दान-पुण्य किया ।

थोड़े दिन फतेहपुर-सीकरी में रहने के बाद सूरिजी आगे पधारे । फतेहपुर आगे के बीच में चौबीस माइल का अन्तर है । सूरिजीने वह चातुर्मास आगेरहीमें किया था । पर्युषष के दिन जब निकट आये तब आगे के श्रावकों ने मिलकर विचार किया कि, बादशाह की सूरिजी महाराज पर बहुत भक्ति है, इसलिए महाराज की ओरसे यदि पर्युषणोंमें जीवहिंसा बंद करने के लिए बादशाह को कहा जायगा तो बादशाह जरूर बंद कर देगा । श्रावकोंने सूरिजी से भी इस विषय में सम्मति ली । सूरिजी की सम्मति मिलने पर अमीपाल दोसी आदि कई मुखिया श्रावक बादशाह के पास गये और श्रीफल आदि भेट कर बोले :—“सूरिजी महाराजने आपको धर्मलाभ कहलाया है ।” सूरिजी का आशीर्वाद सुन कर बादशाह प्रसन्न हुआ और उत्सुकता के साथ पूछने लगा :—“सूरिजी महाराज सकुशल हैं न ? उन्होंने मेरे लिए कोई आज्ञा तो नहीं की है ।” अमीपाल दोसीने उत्तर दिया :—“महाराज बड़े आनंद में हैं । उन्होंने अनुरोध किया है कि, — हमारे पर्युषणों के पवित्र दिन निकट आ रहे हैं, उनमें कोई मनुष्य किसी जीवकी हिंसा न करे । यदि आप इस बातकी मुनादि करा देंगे तो अनेक मूक जीव आपको आशीर्वाद देंगे और मुझे बड़ा आनंद होगा ।”

बादशाहने आठ दिन हिंसा न हो इस बात का फर्मान लिख दिया । आगे में यह ढिंढोरा पिटवा दिया कि, आठ दिन तक कोई

आदमी किसी भी जीव को न मारे । संवत् १६३९ के पर्युषष के आठ दिन तक के लिए यह अमारी घोषणा हुई थी । 'हीरसौभाग्यकाव्य' और 'जगद्गुरु काव्य' में इसका उल्लेख नहीं है । मगर 'विजयप्रशस्ति महाकाव्य' में इसका वर्णन है । 'हीरविजयसूरिरास' में ऋषभदास कवि लिखते हैं कि, केवल पाँच ही दिन तक जीवहिंसा नहीं करने की घोषणा हुई थी ।

चातुर्मास पूर्ण होने पर सूरिजी 'सौरीपुर' की यात्रा करके पुनः आगे आये । वहाँ कई प्रतिष्ठादि कार्य कराकर कुछ दिन बाद 'फतेहपुर-सीकरी' गये । इसबार सूरिजी बादशाह के साथ कई बार मिले थे ।

यह तो कहने की अब आवश्यकता नहीं है कि, अबुल्फज्जल एक विद्वान् मनुष्य था । इसको तत्त्वचर्चा करने में जितना आनंद आता था उतना दूसरी किसी भी बात में नहीं आता था । और तो और धर्मचर्चा छोड़ कर खानेपीने के लिए जाना भी उसे बुरा लगता था । वह धर्मचर्चा जिज्ञासु की तरह करता था । अपनी मान्यता दूसरे को मनाने के लिए वितंडावादी बनकर नहीं । इसीलिए समय समय पर वह हीरविजयसूरि के साथ धर्मचर्चा करता था । सूरिजीको भी उसके साथ बातचीत करने में बड़ी प्रसन्नता होती थी । क्योंकि अबुल्फज्जल जैसे जिज्ञासु था वैसे ही बुद्धिमान भी था । इसकी बुद्धि तत्काल ही बात की तेह तक पहुँच जाती थी । कठिन से कठिन विषय को भी वह सहजहीमें समझ जाता था । सचमुच ही विद्वान् को विद्वान् के साथ वार्तालाप करने में बड़ा आनंद होता है ।

एकबार अबुल्फज्जल के महल में वह और सूरिजी तत्त्वचर्चा कर रहे थे । अकस्मात् बादशाह वहाँ चला गया । अबुल्फज्जलने उठ कर बादशाह को अभिवादन किया । बादशाह उचित आसन पर बैठा ।

अबुलफ़ज्जलने सूरिजीकी विद्वत्ताकी भूरि भूरि प्रशंसा की । प्रशंसा सुनकर बादशाह के अन्तःकरणमें अज्ञात प्रेरणा हुई कि, जो कुछ सूरिजी माँगें वह उन्हे प्रसन्न करने के लिए देना चाहिए । उसने सूरिजीसे प्रार्थना की, - "महाराज ! आप अपना अमूल्य समय खर्च कर हमको उपदेश करने का जो उपकार करते हैं उसका कोई बदला नहीं हो सकता है । तो भी मेरे कल्याणार्थ आप जो कुछ काम मुझे बतायेंगे वह मैं सानंद करूंगा । फर्माइए मैं कौनसी ऐसी सेवा करूं जिससे आप खुश हों ?"

अकबर के समान सम्राट की इतनी भक्ति, इतनी उत्सुक प्रार्थना देखकर भी सूरिजी को अपने निजी-स्वार्थ का ख्याल नहीं आया । उस समय यदि वे चाहते तो अपने लिए, अपने गच्छके लिए या अपने अनुयायियों के लिए, बादशाह से बहुत कुछ कार्य करवा लेते; परन्तु सूरिजीने तो ऐसी कोई बात न की । वे संसार में सर्वोत्कृष्ट कार्य जीवों को अभय बनाने का समझते थे । इसलिए जब जब बादशाहने सूरिजी से कोई सेवाकी इच्छा प्रगट की तभी तब उन्होंने बादशाह से जीवों को अभय बनाने का - जीवों को आराम पहुँचाने का ही कार्य कराया ।

इस समय बादशाहने जब सेवा करने की इच्छा प्रगट की तब सूरिजीने कहा:- "तुम्हारे यहाँ हजारों पक्षी दरबोंमें बंद हैं । उन बेचारोंको मुक्त कर दो ।" बादशाह ने सूरिजी के इस अनुरोध के उपदेश का पालन किया । 'फतेहपुरसीकरी' में एक 'डाबर' नाम का बहुत बड़ा तालाब है । उसके लिए उसने हुक्म दिया कि, कोई व्यक्ति उसमें से मछलियाँ न पकड़े । इस आज्ञाको तत्काल ही व्यवहारमें लाने के लिए श्रीधनविजयजी कुछ सिपाहीयोंको साथ लेकर तालाब पर गये और उन लोगोंको - जो उस समय वहाँ मछलियाँ पकड़ रहे थे - हटा दिया । 'हीरसौभाग्यकाव्य' के कर्ता लिखते हैं कि, डाबर

तालाब में होनेवाली हिंसा बादशाहने श्रीशान्तिचंद्रजी के उपदेशसे बंद की थी ।

उस समय शेख अबुलफ़ज्जलके मकानमें सूरिजी और बादशाह के आपसमें बहुत देर तक धर्मचर्चा होती रही । एकान्त होनेसे जैसे अकबरने खुले दिलसे अपनी शंकाएँ पूछी, उसी तरह सूरिजीने भी यथोचित शब्दोंमें उसका समाधान किया और उसको उपदेश दिया ।

उस समय वार्तालाप के बीचमें सूरिजीने प्रसंग देखकर पर्युषष के आठ दिनों तक सारे राज्यमें, जीवहिंसा बंद करने का फर्मान निकालनेका बादशाहको उपदेश दिया । बादशाहने सूरिजीके उपदेशानुसार पर्युषषके आठ दिन ही नहीं बल्कि, अपने कल्याणार्थ चार दिन और जोड़कर 12 दिनका फर्मान निकालनेकी स्वीकारता दी (भादवा वदी 10 से भादवा सुदी 6 तकके बारह दिन) । उस समय अबुलफ़ज्जलने बादशाहसे नग्रतापूर्वक कहा:- "हुजूर यह हुक्म इस तरह का होना चाहिए जो आगे हमेशां के लिए काम आवे ।" बादशाह ने कहा:- "अच्छी बात है, यह फर्मान तुम्हीं लिखो ।" अबुलफ़ज्जलने फर्मान लिखा । उसके बाद वह शाही महोर और बादशाहके हस्ताक्षर के साथ सारे सूबोंमें भेजा गया ।

उस फर्मानमें महोरदस्तखत हो गये, उसके बाद वह राज्यसभामें पढ़ा गया । फिर बादशाहने अपने हाथोंसे उसे थानसिंह को सौंपा । थानसिंहने सम्मानपूर्वक उसे मस्तकपर चढ़ाया और बादशाहको फूलों और मोतियोंसे बधाया ।

बादशाह के इस फर्मान से लोगोंमें अनेक प्रकारकी चर्चाएँ होने लगीं । कई कहते थे, - सूरिजी कितने प्रतापी हैं कि, बादशाहको भी अपना पूरा भक्त बना लिया; कई कहते थे, - सूरिजीने बादशाहको आकाशमें उसकी सात पीढ़ीके पुरुषाओंको बताया; कई कहते थे,-

सूरिजीने बादशाहको सोनेकी खानें बताईं और कई यह भी कहते थे कि, सूरिजीने एक फकीरकी टोपी उड़ाकर बादशाहको चमत्कार दिखाया, इसीलिए वह इनका अनुयायी हो गया है। जनतामें ऐसी अनेक बातें फैल गई थीं। पीछेके कई जैनलेखकोंने भी परं परागत उपर्युक्त किंवदन्तियोंको सत्य मानकर, हीरविजयसूरिके विषयमें लिखते हुए, किसी न किसी, इसी प्रकारके, चमत्कार का उल्लेख किया है। मगर ये बातें ऐतिहासिक सत्यसे विरुद्ध हैं। हीरविजयसूरिने मंत्र-यंत्र या इसी तरहकी अन्य किसी विद्या द्वारा बादशाहको कभी कोई चमत्कार नहीं दिखाया था उन्होंने तो कई बार बादशाह के अनुरोध के उत्तर में कहा था कि, -‘यंत्र-मंत्र करना हमारा धर्म नहीं है।’ वे एक पवित्र चारित्रिवाले आचार्य थे। वे अपने चारित्र के प्रभावही से हरेक मनुष्य के हृदय में सभ्दाव उत्पन्न कर सकते थे। उनके मुखारविंद पर ऐसी शान्ति बिराजती थी कि, क्रोधीसे क्रोधी मनुष्य भी उसको देखकर शान्त हो जाता था। इस बातको हरेक जानता है कि, - मनुष्योंके अन्तःकरणोंमें जैसा उत्तम प्रभाव एक पवित्र चारित्र डाल सकता है वैसा प्रभाव सैकड़ों मनुष्यों के उपदेश भी नहीं डाल सकते हैं। शुद्ध आचरण-पवित्र चारित्र-के बिना जो मनुष्य उपदेश देता है उसके उपदेशको लोग हँसीमें उड़ा दिया करते हैं। सूरिजीके चारित्रिबलसे हरेक तरहके आदमी उनके आगे सिर झुका देते थे; चारित्र का ही यह प्रभाव था कि, बादशाह सूरिजीके बचनों का ब्रह्मवचन के तुल्य सत्कार करता था।

यह तो प्रसिद्ध ही है कि, हीरविजयसूरि सर्वथा त्यागी और निःस्पृह महात्मा थे। इसलिए बादशाह उनकी भक्ति करने लग गया था, तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। क्योंकि अकबर में यह एक खास गुण था कि, वह उस मनुष्य का बहुत ज्यादा सम्मान करता था जो निस्पृही, निर्लोभी और जगत् के सारे प्राणियों को अपने

समान देखनेवाला होता था। अपने इस गुणके कारण ही अकबर हीरविजयसूरिका सम्मान करता था और उनके उपदेशानुसार कार्य करता था। अकबरके समान-मुसलमान बादशाहको ऐसा उपदेश-किसी तरह के स्वार्थ बिना केवल जगत् के कल्याणहीका-दूसरों की भलाई के कार्योंही का उपदेश जैन साधुके समान त्यागी-निःस्पृही पुरुष के सिवा दूसरा कौन दे सकता था ?”

बादशाहने हीरविजयसूरि के उपदेश से पर्युषण के आठ दिन और दूसरे चार दिन ऐसे बारह दिन (भादवा वदी 10 से भादवा सुदी 6) तक अपने समस्त राज्य में, कोई मनुष्य किसी भी जीवकी हिंसा न करे, इस बातकी जो आज्ञा प्रकाशित की थी उसकी छः नकलें करवाई गई। उनका इस तरह उपयोग हुआ - 1 गुजरात और सौराष्ट्र के सूबोंमें, 2 दिल्ली, फतेहपुर आदिमें, 3 अजमेर, नागोर आदिमें, 4 मालवा और दक्षिण में 5 लाहोर, मुलतान में भेजी गई और 6 खास सूरिजी महाराज को सौंपी गई।

ऊपर कहा जा चुका है कि, अबुलफ़ज्जलक मकान पर बादशाह और सूरिजी के बीचमें बहुत ही खुले दिलेसे धर्मचर्चा और वार्तालाप हुआ था। उस समय सूरिजीने उपदेश देते हुए कहा था कि, “मनुष्य मात्रको सत्यका स्वीकार करने की तरफ रुचि रखनी चाहिए। अज्ञानावस्था में मनुष्य अनेक दुष्कर्म करता है; परन्तु ज्ञान होने पर उसे अपने कृत दुष्कर्मों का पश्चात्ताप और सत्यका स्वीकार करना ही चाहिए। उसे यह दुराग्रह न करना चाहिए कि, मैं चिर कालसे अमुक मार्ग पर चलता आया हूँ; मेरे बापदादे इसी मार्ग पर चले आ रहे हैं इसलिए मैं इस बातका त्याग नहीं कर सकता हूँ।”

सूरिजीकी इसी बातको पुष्ट करनेवाली एक बात बादशाहने भी कही थी। वह मनोरंजक एवं शिक्षाप्रद होनेसे यहाँ लिखी जाती है।

उसने कहा: - “महाराज ! मेरे जितने सेवक हैं वे सारे मांसाहारी हैं । इसलिए उन्हें आपका बताया हुआ जीवदयामार्ग अच्छा नहीं लगता । वे कहते हैं कि, - अपने पुरुषा जिस कामको करते आये हैं उसे छोड़ना अनुचित है । एकबार सारे सर्दार, उमराव इकट्ठे हुए थे उन्होंने मुझसे कहा, - ‘अपने बापका सच्चा बेटा वही होता है जो पहिले से जो मार्ग चला आता है उसको नहीं छोड़ता है ।’ उन्होंने एक उदाहरण भी दिया था । वह यह है, - ”

किसी देशकी राजधानी के पाटनगर के पास एक पहाड़ था । वहाँ के बादशाहने हुक्म दिया कि, यह पहाड़ हवा रोकता है इसलिये इसको नष्ट कर दो । लोगोंने सुरंगें लगालगा कर उस पहाड़को खोद डाला । उस जगह खुला मैदान हो गया । वहाँ से थोड़ी ही दूरी पर समुद्र था । एक बार समुद्र चढ़ा । पहिले उसका पानी पहाड़ से रुका रहता मगर इस समय पहाड़ के अभाव पानी का प्रबल चढ़ाव शहर में फिर गया । लोग बह गये, नगर नष्ट हो गया । तात्पर्य करने का यह है कि, प्राचीनकालसे स्थित पहाड़ को बादशाहने तुड़वाडाला उसका परिणाम सिर्फ़ बादशाही को नहीं बल्कि सारे नगरको भोगना पड़ा ।”

मुझे उमरावोंने जब यह किस्सा सुनाया तब मैंने भी उनकी बातका खंडन और अपनी बातका मंडन करने के लिए एक कथा सुनाई । मैंने कहा: -

“सुनो, एक बादशाह था वह अंधा था । उसके एक लड़का हुआ । वह भी अंधा ही हुआ । मगर उसके पोता जन्मा वह सूझता दोनों आँखोंवाला था । अब बताओ कि, हमारी तुच्छ तृप्ति के लिए बिचारे कितने निर्दोष जीवों का संहार हो जाता है ।”

एक दूसरी बात और भी है, - “मेरी सातवीं पीढ़ी के महापुरुष तैमूर थे । वे पहिले पशुओंको चराया करते थे । एकबार एक फकीर यह आवाज देता हुआ आया कि, - ‘जो मुझे रोटी दे मैं उसे बादशाहत दूँ ।’ तैमूरने रोटी दी । फकीरने उनके सिर पर मुकुट धरकर कहा: - “जा, मैंने तुझे बादशाह बनाया ।”

“एकबार एक चरवाहेने किसी दूबले घोड़के चाबुक मारा । उसका तिरस्कार करने के लिए हजारों चरवाहे जमा हो गये । तैमूर भी उन्हीमें था । वे जिस जंगल में जमा हुए थे उसीमेंसे एक क्राफ़िला ऊँटों पर माल लाद कर गुजरा । तैमूरने चरवाहोंको उकसाकर सारा माल लूट लिया । वहाँ के बादशाहके पास फर्याद पहुँची । बादशाहने फौज भेजी । तैमूरकी सर्दारी में चरवाहोंने फौजका मुकाबिला किया और फौजको भगा दिया । बादशाह स्वयं इन चरवाहे डाकूओंका दमन करने आया । मगर बादशाह वहीं काम आया और तैमूर वहाँका बादशाह बन बैठा ।”

“बताओ हमें भी तैमूरकी प्रारंभिक अवस्थाके माफिक गुलामी करनी चाहिए या बादशाही ?” “उमराव, खान, बजीर, सर्दार वगेरा जितने वहाँ बैठे थे सभीने यही उत्तर दिया कि, - अमुक रीति पुरानी हो तो भी यदी वह खराब हो तो त्याज्य है ।”

“महाराज ! वास्तविक बात तो यह है कि लोग मांसाहार केवल अपनी रसना इन्द्रिय को तृप्त करने के लिए करते हैं । वे यह नहीं देखते कि, हमारी तुच्छ तृप्ति के लिए बिचारे कितने निर्दोष जीवों का संहार हो जाता है ।”

“महाराज ! मैं दूसरों की क्या कहूँ, मैंने खुदने भी ऐसे ऐसे पाप किये हैं कि, जैसे पाप संसार में शायद ही किसी दूसरों ने किये होंगे । जब मैंने चितोड़गढ़ पर फतेह किया था तब मैंने जो पाप

किये थे वे बयान से बाहर हैं। उस मस्य राणा के मनुष्यों और हाथी घोड़ों की तो बात ही क्या थी? मैंने चितोड़ के एक कुत्ते तक को भी मारे बिना नहीं छोड़ा था। चितोड़ में रहनेवाला कोई भी जीव मेरी फोज की द्रष्टिमें आता तो वह कल्ल ही होता। महाराज! ऐसे ही ऐसे पाप करके मैंने कितने ही किले जीते हैं। अलावा इसके शिकार में भी मैंने कोई कसर नहीं की। गुरुजी! मेड़ता के रस्ते आते हुए आपने मेरे बनवाये हुए उन हजारों को देखे होंगे, जिनकी संख्या 114 है। हरेक हजार पर हरिणों के पाँच पाँच सौ सींग लगाये गये हैं। मैंने छत्तीस हजार शेखों के घरमें भाजी बँटाई थी। उसमें हरेक घर में एक हिरण का चमड़ा, दो सींग और एक महोर दी थी।”

१. हजारों के संबंध में ‘श्रीहीरविजयसूरिरासमें’ कवि ऋषभदास ने अकबर के मुख से निम्नलिखित शब्द कहलाये हैं, -

“देखे हजारे हमारे तुम्ह, पक्सोचउद कीए वे हम्म,
अकेके सिंग पंचसे पंच पातिग करता नहि खलखंच ॥७॥”

बदाउती के कथन से इस बात को पुष्टी मिलती है। वह लिखता है:-

“His Majesty's extreme devotion induced him every year to go on a pilgrimage to that city, and so he ordered a palace to be built at every stage between Agra and that place, and a pillar to be erected and a well sunk at every coss.”

(Vol. II by W. H. Lowe, M. A. P. 176.)

भावार्थ - प्रतिवर्ष बादशाह अपनी अत्यन्त भक्ति के कारण उस नगर (अजमेर) जाता था और इसीलिए उसने आगरे और अजमेर के बीच में स्थान स्थान पर जहाँ जहाँ मुकाम होते थे - महल और एक कोस की दूरी पर एक कूवा व एक स्तंभ (हजारा) बनवाया था।

आगरे और अजमेर के बीच में २२८ माइल का अंतर है। इस हिसाब से भी 114 हजारे बनवाने का कवि ऋषभदास का कथन सत्य प्रमाणित होता है।

इसी से आप समझ सकते हैं कि मैंने कितनी शिकारें की हैं और उनमें कितने जीवों को मारा है। महाराज! मैं अपने पापों का क्या वर्णन करूँ? मैं हमेशा पाँच पाँच सौ चिड़ियों की जीभें खाता था, परन्तु आपके दर्शन से और आपके उपदेशमृतपान करने के बाद मैंने वह पापकार्य करना छोड़ दिया है। आपने महती कृपा करके मुझे जो उत्तम मार्ग दिखाया है उसके लिए मैं आपका अत्यंत कृतज्ञ हूँ। महाराज! शुद्ध अन्तःकरण के साथ कहता हूँ कि, मैंने वर्षभर में से छः मास तक मांसाहार नहीं करने की प्रतिज्ञा ली है। और इस बात का प्रयत्न कर रहा हूँ कि, हमेशा के लिए मांसाहार करना छोड़ दूँ। मैं सच कहता हूँ कि, मांसाहार से मुझे अब बहुत नफरत हो गई है।”

बादशाह की उपर्युक्त बातें सुनकर सूरिजी को अत्यन्त आनंद हुआ। उन्होंने उसको उसकी सरलता और सत्यप्रियता के लिए पुनः पुनः धन्यवाद दिया।

सूरिजी के उपदेश का बादशाह के हृदय पर कितना प्रभाव पड़ा सो, बादशाह के उपर्युक्त हार्दिक कथन से स्पष्टतया समझ में आ जाता है। बादशाह के दिलमें मांसाहार के लिए नफरत पैदा कराने के काममें यदि कोई सफल हुआ था तो वे हीरविजयसूरी ही थे।

इस तरह हीरविजयसूरिजी के समागम के बाद ही बादशाह के आचार-विचार और वर्ताव में बहुत बड़ा परिवर्तन होना प्रारंभ होने लगा था। शनैः शनैः इस परिवर्तन का प्रभाव कहाँतक हुआ सो हम अगले प्रकरणमें बतायेंगे। यहाँ तो हम अबुलफज्ल के मकान में सूरिजी और बादशाह के आपसमें जो ज्ञानगोष्ठी हुई थी उसीका आस्वादन लेंगे।

बादशाहने प्रसंगवश कहा: - “महाराज! कई लोग कहते हैं

कि, - 'हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेजैनमंदिरम्' (हाथी मार डाले तो भी जैनमंदिरमें नहीं जाना चाहिए ।) इसका सबब क्या है ?"

बादशाह की बात सुनकर सूरिजी जरा हँसे और बोले,- "राजन् ! मैं क्या उत्तर दूँ ? आप बुद्धिमान हैं, इसलिए स्वयमेव समझ सकते हैं । तो भी मैं सिर्फ इतना कहना चाहता हूँ कि, - उक्त वाक्य कौन सी प्राचीन श्रुति, स्मृति का है ? किसी शास्त्रमें यह बात नहीं है। किसी द्वेषी मनुष्य की यह एक कल्पना मात्र है । इसका सीधा उत्तर देने के लिए जैनलोग भी कह सकते हैं कि,- 'सिंहेनाऽऽताड्यमानोऽपि न गच्छेच्छैवमंदिरम् ।' (सिंह ने घेर लिया हो तो भी शिवमंदिर में नहीं जाना चाहिए ।) मगर इसका परिणाम क्या है ? केवल लटुबाजी और झगड़ा । राजन् । भारतवर्षकी अवनतिका कारण यदि कुछ है तो सिर्फ यही है । जैनियों को हिन्दुओंने नास्तिक बताया । हिन्दुओं को जैनियोंने मिथ्यादृष्टि कहा । मुसलमानोंने हिन्दुओंको काफिर कहा । हिन्दुओंने उन्हें म्लेच्छ बताया । इस तरह हरेक मजहबवाला दूसरेको झूठा-नास्तिक बताता है । मग ऐसे विचार रखनेवाले लोग बहुत ही कम होंगे कि, - 'बालादपि सुभाषितं ग्राह्यम् ।' (एक बालक का भी श्रेष्ठ वचन ग्रहण करना चाहिए ।) मनुष्य मात्रको जहाँसे अच्छी बात मिलती हो वहाँसे ले लेनी चाहिए । जो ऐसा करता है वही अपने जीवनमें उत्तमोत्तम गुण संग्रह कर सकता है । मगर विपरीत इसके यदि सभी एक दूसरे को नास्तिक या झूठा ठहराने में ही प्रयत्न में लगे रहेंगे तो फिर संसारमें सच्चा या आस्तिक कौन रहेगा ? इसलिए एक दूसरे को झूठा या नास्तिक बताने की भ्रान्तिमें न पड़ यदि सत्य वस्तु का ही प्रकाश किया जाय तो कितना लाभ हो ? वास्तवमें तो नास्तिक मनुष्य वही होता है जो आत्मा, पुण्य, पाप, ईश्वर आदि पदार्थोंको नहीं मानता है । जो इन पदार्थों को मानते हैं वे नास्तिक नहीं कहला सकते हैं ।"

सूरिजी का यह उत्तर सुनकर बादशाह को बहुत आनंद हुआ । उसको विश्वास हुआ और उसने अबुलफ़ज़ल को कहा:- "अब तक मैं जितने विद्वानों से मिला उन सबने यही कहा था कि, - 'जो हमारा है वही सत्य है ।' मगर सूरिजी के शब्दों से स्पष्ट हो रहा है कि ये अपनी बात को ही सत्य नहीं मानते हैं बल्कि जो सत्य है उसी को अपना मानते हैं । यही वास्तविक सिद्धान्त है । इनके पवित्र हृदय में दुराग्रह का नाम भी नहीं है । धन्य है ऐसे महात्मा को !"

सूरिजी और बादशाह के आपस में उपर्युक्त बातें हो रही थीं उस वक्त देवीमिश्र^१ नामके एक ब्राह्मण पंडित भी वहाँ ही आ गये थे । उनको संबोधन कर बादशाह ने पूछा:- "क्यों पंडितजी ! हीरविजयसूरिजी जो कुछ कहते हैं वह ठीक है या नहीं ?"

पंडितजी ने कहा:- "नहीं हुजूर ! सूरिजी जो कुछ कह रहे हैं वह बिलकुल वेदवाक्य के समान है । इसमें विरुद्धता का लेश भी नहीं है । मैंने आज तक इसके समान स्वच्छ हृदयी, तटस्थ और अपूर्व विद्वान मुनि नहीं देखे । यह बात निःसंशय है कि ये एक जबर्दस्त पंडित-यति हैं ।"

एक विद्वान् ब्राह्मण के निकाले हुए उपर्युक्त शब्द बादशाह की श्रद्धा को यदि वज्रलेपवत् बना दें तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है ।

वक्त बहुत होने से बादशाह अबुलफ़ज़ल के मकान से अपने

१. ये अकबर के दर्बार के एक विध्वान थे । महाभारतादि ग्रंथों के अनुवाद में दुभाषिए का काम करते थे । बादशाह की उन पर अच्छी कृपा थी । इनके संबंध में जिन्हे विशेष जानना हो वे 'बदाउनी' २ रे भाग के, डबल्यु.एच.लो.एम.ए. कृत अंग्रेजी अनुवाद के २६५ वें पृष्ठ देखें ।

महलों में गया और सूरिजी जब तक 'फतेहपुर सीकरी' में रहे तब तक अनेक बार बादशाहसे मिले और धर्मचर्चा की । भिन्न भिन्न मुलाकातोंमें सूरिजीने बादशाह को भिन्न भिन्न विषय समझाये । इससे बादशाह को यह निश्चय हो गया कि, सूरिजी एक असाधारण विद्वान् साधु हैं । उनको जैन तो मानते और पूजते ही हैं, परंतु अपनी विद्वत्ता और पवित्र चारित्र के गुण के लिए वे समस्त संसार के बन्द्य और पूज्य हैं । अतः उन्हें जैनगुरु न कहकर 'जगद्गुरु' कहना ही उनका उचित सत्कार करना है । बादशाह ने अपनी इस धारणा को मन ही में नहीं रखा । एक दिन उसने अपनी राजसभा में सूरिजी को 'जगद्गुरु' के पदसे विभूषित किया । इस पदप्रदान की प्रसन्नता में बादशाह ने अनेक पशुपक्षियों को बंधन से मुक्त किया ।

एकबार बादशाह अबुल्फ़ जल और बीरबल आदि दर्बारियों के साथ बैठा था । उसी समय शान्तिचंद्रजी आदि कई विद्वान् मुनियों के साथ सूरिजी महाराज भी वहाँ पहुँच गये । उस समय सूरिजी ने बादशाह को उपदेश दिया । कुछ देरके बाद बादशाहने विनम्र स्वरमे कहा: - "महाराज ! मेरे लायक जो कुछ काम हो वह निःसकोच भावसे बताइए । क्योंकि मैं आपही का हूँ । और जब मैं ही आपका हूँ तब यह कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती है कि, यह राज्यऋष्टिधि समृष्टिधि और सारा राज्य आप ही का है ।

सूरिजीने कहा: - "आपके यहाँ कैदी बहुत हैं । उनको यदि मुक्तकर दे तो अच्छा हो ।" बादशाह को अपराधियों से विशेष चिढ़ थी । इसलिए उसने सूरिजी की इस बात को नहीं माना । ऋषभदास कविने बादशाह के उत्तर का इन शब्दोंमें वर्णन किया है:—

"कहइ अकबर ये मोटा चोर, मुलकमिं बहुत पड़ावइं सोर ।
एक खराब हजारकुं करइ, इहा भले ये जब लगि मरइ ॥"

(हीरविजयसूरियास, पृष्ठ १३४)

जैनकविकी यह सत्यता प्रशंसनीय है कि, जो काम अकबरने सूरिजीके अनुरोधसे नहीं किया उसके लिए भी लिख दिया कि, - 'नहीं किया ।'

अकबरने उसके बाद पूछा: - "इसके सिवा आप और कोई बात कहिए ।" सूरिजी सोच रहे थे कि, अब बादशाहको कौनसा दूसरा कार्य करने के लिए कहना चाहिए । इतनेहीमें शान्तिचंद्रजीने सूरिजीके कानमें कहा:— "महाराज सोच क्या रहे हैं ? ऐसा परवाना लिखवाइए कि, जिससे सारे गच्छ के लोग आपको मानें और आपकी चरणवंदना करें ।"

पाठक ! सूरिजीकी उदार प्रकृतिको जानते हुए भी क्या आप उनसे ऐसे कथनकी आशा कर सकते हैं ? सूरिजीके मुखकमलसे क्या ऐसी स्वार्थमिश्रित वाणी-सौरभ निकल सकती है ? क्या सूरिजी इस बातको नहीं जानते थे कि लोभ सर्वनाशकी जड़ है ? ऐसी लोभवृत्तिके वशमें होकर अपना सम्मान बढ़ानेकी बात कहनेसे क्या परिणाम होगा सो सूरिजी सोचने लगे । सूरिजी शान्तिचंद्रकी सलाहकी उपेक्षा कर कुछ कहना चाहते थे, इतनेहीमें बादशाह बोला: - "गुरुजी ! शान्तिचंद्रजीने आपसे क्या कहा ?" सूरिजीने जो बात थी वह कह दी और कहा: - "मैं हरगिज यह बात नहीं चाहता । शिष्य गुरुभक्ति के कारण जो इच्छा हो सो कहें । मेरा कोई मान करे या अपमान करे, मुझे कोई माने या न माने । मेरे लिए सब समान हैं । मेरा धर्म तो यह है कि, समस्त जीवोंको समानभावसे देखना और उनको कल्याणकारी मार्गिका उपदेश देना ।"

सूरिजीकी इस उदारता और निःस्पृहता के लिए बादशाहको अत्यधिक आनंद हुआ । इतना ही नहीं, उसने अपने समस्त दर्बारियोंको उद्देश करके कहा: - "मैंने ऐसी निःस्पृहता रखनेवाला, सिवा

हीरविजयसूरिजी के और किसीको नहीं देखा । जो अपने स्वार्थकी कोई बात नहीं करते । जब बोलते हैं तब परोपकारहीकी बात । संसारमें 'साधु' 'संन्यासी' 'योगी' या 'महात्मा' आदिका पद धारण करनेवाले आदिमियोंकी कमी नहीं है । मगर वे सभी प्रायः किसी न किसी फंदमें फँसे ही रहते हैं । कई तो बड़े बड़े मठाधीश हैं । लाखोंकी उनके पास सम्पत्ति है, जिससे आनंद करते हैं । कई सूफी, शेख और कंथाधारी होते हुए भी द्रव्य और दो दो स्त्रीयों के स्वामी होते हैं । कई 'महर' - दया रखने की बड़ी बड़ी बातें करते हुए भी जानवरोंको मारकर खाते नहीं हिचकिचाते हैं । कई मंत्र-तंत्रका ढोंग करके भोले लोगोंको ठगते फिरते हैं । कई 'दंडधारी' और 'दरवेश' का रूप धारण कर अनेक प्रकारके छल कपटका विस्तार करते फिरते हैं और कई 'तापस' नामधारी घरघरसे मांगकर अपने भोगविलासका सामान जुटाते हैं । क्या मठवासी र क्या संन्यासी, क्या गोदड़िया और क्या गिरि-पुरी, क्या नाथ और क्या नागे, प्रायः सभी क्रोधादि कषायोंको नहीं दबा सके हैं और लोग दुनिया के गुरु-र्धमगुरु कैसे माने जा सकते हैं ? जो क्रोध, मान, माया और लोभादि कषायोंसे लिप्त हों, जनिका चारित्र विषयवासनाके उपभोगसे हीन बना हुआ हो वे कैसे पूज्य हो सकते हैं ? इस संसारमें रहते हुए भी कंचन और कामिनीसे इस तरह सर्वथा दूर रहना तथा मनमें किसीभी तरहकी तृष्णा न रखना सचमुच ही महान कठिन कार्य है ।"

बादशाहके इस कथनने दर्बारियोंके दिलों पर गहरा प्रभाव डाला । उनके हृदयों में सूरिजीके प्रति भक्तिभाव थे वे और भी कई गुने ज्यादा बढ़ गये ।

उस समय बीरबल के हृदयमें सूरिजीसे कुछ पूछने की अभिलाषा हुई । इसलिए उसने बादशाहसे आज्ञा माँगी । बादशाहने मंजूरी दी । तब बीरबलने सूरिजीसे पूछना प्रारंभ किया:-

बीरबल:- महाराज ! क्या शंकर सगुण हैं ?

सूरिजी :- हाँ, शंकर सगुण हैं ।

बी० - मैं तो मानता हूँ कि शंकर निर्गुण ही हैं ।

सूरि० - ऐसा नहीं है । अच्छा, क्या तुम शंकर को ईश्वर मानते हो ?

बी० - हाँ ।

सूरि० - ईश्वर ज्ञानी है या अज्ञानी ?

बी० - ईश्वर ज्ञानी है ।

सूरि० - ज्ञानी अर्थात् ?

बी० - ज्ञानवाला ।

सूरि - ज्ञान गुण है या नहीं ?

बी० - महाराज ! ज्ञान तो गुण ही है ।

सूरि० - ज्ञानको गुण बताते हो ?

बी० - जी हाँ, ज्ञान को गुण ही मानता हूँ ।

सूरि० - यदि तुम ज्ञान को गुण मानते हो तो फिर तुम्हारी ही मान्यतानुसार यह सिद्ध है कि शंकर-ईश्वर 'सगुण' हैं ।

बीरबलने भक्तिविनम्र स्वरमें कहा:- "महाराज ! मुझे विश्वास हो गया है कि, शंकर 'सगुण' ही हैं ।"

हरेक समझ सके ऐसी युक्तियों से शंकर की 'सगुणता' सिद्ध होते देख सभी को बड़ा आनंद हुआ ।

इस मुलाकात के बाद बहुत समय तक सूरिजी बादशाह से न

मिल सके, इसलिए एक दिन बादशाहने बड़ी ही आतुरताके साथ सूरिजीके दर्शन करने की अभिलाषा प्रगट की । सूरिजी बादशाहके पास गये । उसे प्रभावोत्पादक उपदेश दिया । सूरिजीका उपदेश सुनने से बादशाह के हृदयमें एक और ही तरहकी शीतलताका संचार हुआ । सूरिजीके वचनोंमें सचमुच ही बड़ा माधुर्य था कि, उनको सुनने से सुननेवाले के अन्तःकरणमें शान्ति और आनंदका प्रसार हो जाता था । यही कारण था कि, उनका उपदेश सुनने की बादशाह को बारबार इच्छा हुआ करती थी ।

यहाँ एक बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि, आजकलके राजा-महाराजा बहुत समय तक उपदेश सुनकर 'उपकार' मानने का जो फल उपदेष्टा को देते हैं, उतना ही फल देकर वह नहीं रह जाता था । वह समझता था कि, जगत्को तृणवत् समझनेवाले महात्मा लोग अपना अमूल्य समय व्यय कर हमको उपदेश देने का जो कष्ट उठाते हैं, वह किसलिए ? 'आपका उपकार मानता हूँ ।' सिर्फ ये शब्द सुननेही के लिए नहीं, जगत् के और मेरे कल्याण के लिए । महात्माका उपदेश सुनकर तदनुसार या उसमें से एक बात पर भी अमल न किया जाय तो दोनों के जो समय और शक्ति व्यय होते हैं उनसे लाभ ही क्या है ?

अकबर अपनी इस उदार भावनाही के कारण हरबार उपदेश सुनने के बाद सूरिजीसे निवेदन करता था कि, मेरे लायक काम हो तो बताइए । इसबारभी उसने ऐसा ही किया ।

सूरिजीने इस बार एक महत्त्व का कार्य बताया । वे बोले: - "आपने आज तक मेरे कथनानुसार कई अच्छे अच्छे काम किये हैं । इसलिए बार बार कुछ कहना अच्छा नहीं लगता है । तो भी लोककल्याण की भावना कहलाये बिना नहीं रहती । इसलिए मेरा

अनुरोध है कि, आप अपने राज्यसे 'जजिया'^१ - कर उठा दीजिए और तीर्थों में यात्रियोंसे प्रतिमनुष्य जो 'कर' लिया जाता है उसे बंद कर दीजिए । क्योंकि इन दोनों बातोंसे लोगोंको बहुत ज्यादा दुःख उठाना पड़ता है ।"

सूरिजी के कथन को मानकर बादशाह ने उसी समय दोनों करों को उठा देने के फर्मान लिख दिये ।

हीरविजयसूरियासके कर्ता कवि ऋषभदासने उस मुलाकात का वर्णन करते हुए यह भी लिखा है कि, - बादशाह और सूरिजीमें उक्त प्रकारका जो वार्तालाप हुआ था उस समय अनेक दर्बारी मौजूद थे ।

उसके बाद दोनोंमें बहुत देरतक एकान्तमें वार्तालाप हुआ । उसका विषय क्या था सो कोई न जान सका ।"

कहाजाता है कि, जब सूरिजी और बादशाह एकान्तमें वार्तालाप कर रहे थे तब मीठागप्पी नामका व्यक्ति-जिसको हर समय बादशाह के पास जानेकी आज्ञा थी - नंगे सिर 'नमो नारायणाय' पुकारता हुआ बादशाह के पास पहुँच गया । इतना ही नहीं अपने स्वभावानुसार वह कई हास्यजनक चेष्टाएँ भी करने लगा । बादशाहने उसकी इस आदतको मिटाने के लिए 'शाल' देकर निकाल दिया ।"

१. यद्यपि अकबरने गदी बैठने के नौ बरस बाद अपने राज्य से 'जजिया' उठा दिया था, इसका तीसरे प्रकरणमें उल्लेख हो चुका है, तथापि गुजरातमेंसे यह 'जजिया' नहीं हटा था । कारण-उस समय गुजरात अकबर के अधिकारमें नहीं आया था । इससे यह सिद्ध होता है कि सूरिजीके उपदेशसे उसने 'जजिया' बंद करने का जो फर्मान दिया था वह गुजरात के लिए था । 'हीरसौभाग्यकाव्य' की टीकासे भी यह बात सिद्ध होती है । हीरसौभाग्यकाव्य के १४ वें सर्गके २७१ वें श्लोक की टीकामें लिखा है कि 'जेजीयकाख्यो गौर्जरकरविशेषः' (जजिया (यहाँ) गुजरातके 'कर' विशेषका नाम है ।)

एकान्तमें वार्तालाप जब समाप्त हुआ तब सूरिजी उपाश्रय गये।



इस प्रसंग पर एक दूसरी बातका स्पष्टीकरण करना भी जरूरी मालूम होता है कि सूरिजीने बादशाहसे इतनी मुलाकातें कीं, तबतक वे एक ही स्थान में नहीं रहे थे। बीचमें वे मथुराकी यात्रा करनेके लिए भी गये थे। वहाँ उन्होंने पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथ के दर्शन किये थे। इसी तरह जंबूस्वामी, प्रभवस्वामी आदि महापुरुषों के ५२७ स्तूपों की भी उन्होंने वंदना की थी। वहाँसे गवालियर जाकर बावन गज प्रमाण की ऋषभदेव की मूर्तिको वासक्षेप पूर्वक नमस्कार किया था। उसके बाद वहाँ से वापिस आगरे गये थे। उस समय मेडताके रहनेवाले सदारंगने उत्साहपूर्वक हाथी, घोड़े और अन्यान्य कई पदार्थों का दान किया था और बड़े आडंबर के साथ सूरिजीका नगरप्रवेश कराया था। वह अर्थात् संवत् १६४१ का चौमासा सूरिजीने आगरे में किया था और चातुर्मास के समाप्त होने पर पुनः फतेपुर सीकरी गये थे।



वक्त अनुमान से भी ज्यादा गुजर गया था। फल प्राप्ति भी कल्पनातीत हो गई थी। गुजरात से भी विजयसेनसूरि के प्रत्र बार बार आते थे कि, आप गुजरात में बहुत जल्दी आइए। ऐसे ही अनेक कारणों से 'सूरिजी' की इच्छा गुजरात की तरफ जानेकी हुई। बात भी ठीक ही है कि, साधुओंको ज्यादा समय तक एक ही स्थान में नहीं रहना चाहिए। ज्यादा रहने से लाभ के बजाय हानि ही होती है। कवि ऋषभदास के शब्दों में :-

“स्त्री पीहरि नर सासरइ, संयमियां सहिवास,
ए त्रिणे अलघांमणां जो मंडइ थिरवास ।”

एक कविने कहा है :-

“बहता पानी निर्मला, बँधा सो गंदा होय,
साधू तो रमता भला, दाग न लागे कोय ।

अतः सूरिजीकी विहार करने की इच्छा अयोग्य न थी। एक बार अवसर देखकर सूरिजीने अपनी यह इच्छा बादशाह के सामने प्रगट की। बादशाहने बड़े ही आग्रहातुर शब्दोंमें कहा:- “आप जो कुछ आज्ञा दें वह करने को मैं तैयार हूँ। आपको गुजरात में जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। आप यहीं रहिए और मुझे धर्मोपदेश दीजिए ।”

सूरिजीने कहा:- “मैं समझता हूँ कि, आपके समागमसे मैं अनेक धार्मिक लाभ उठा सकता हूँ। अर्थात् आपसे अनेक धार्मिक कार्य करा सकता हूँ। मगर कई अनिवार्य कारणों से श्रीविजयसेनसूरि मुझको बहुत ही जल्द गुजरात में बुलाते हैं। इसलिए मेरा गुजरात जाना जरूरी है। वहाँ जाकर मैं यथासाध्य शीघ्रही विजयसेनसूरि को आपके पास भेजूँगा ।”

अन्तमें सूरिजी का निश्चय देखकर बादशाहने उन्हें गुजरात जानेकी अनुमति दी। मगर इतनी याचना जरूर की कि, विजयसेनसूरि यहाँ पहुँचें तबतक समय समय पर मुझे उपदेश देने के लिये आप अपने एक उत्तम विद्वान् शिष्यको अवश्यमेव छोड़ जाइए।

बादशाह के इस आग्रह से सूरिजीने श्रीशान्तिचंद्रजीको बादशाह के पास छोड़ा और आपने 'जेताशाह' को दीक्षा देकर वहाँ से विहार किया और वि.सं. १६४२ का चौमासा अभिरायाबाद में किया।